कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास
को समर्पित

वार्षिक मूल्य : 70 रुपये

वर्ष 53 अंक : 3 जनवरी 2007 मूल्य : 7 रुपये

विशेष आर्थिक क्षेत्र
विश्व व्यापार संगठन
किसान आत्महत्याएं

रोज़गार समाचार

क्या आप सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान/एसएससी/यूपीएससी/ आरआरबी/सशस्त्र सेनाओं/बैंकों में रोजगार की तलाश में हैं?

तो अब और तलाश करने की आवश्यकता नहीं

रोजगार समाचार खरीदें और रोजगार के अनेक अवसरों/दाखिलों/ परिणामों के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त करें।

हमारी वेबसाइट देखें :

www.employmentnews.gov.in

पाठक वेबसाइट के माध्यम से रोजगार संबंधी सूचनाएं व अपने कैरियर संबंधी सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

रोज़गार समाचार

ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-5, आर के पुरम, नई दिल्ली
फोन-26182079, 26107405

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

वर्ष : 53 ★ अंक 3 ★ पृष्ठ : 56

पौष–माघ 1928, जनवरी 2007

संपादक

स्नेह राय

संपादकीय पत्र–व्यवहार

संपादक, कुरुक्षेत्र

कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,

गेट नं. 5, निर्माण भवन

ग्रामीण विकास मंत्रालय

नई दिल्ली–110011

दूरभाष : 23061014, 23061952

फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास

वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in

ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)

एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक

जगदीश प्रसाद

दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

आवरण चित्र

सर्वेश

आवरण सज्जा

संजीव सिंह एवं रजनी दवे

मूल्य एक प्रति : सात रुपये

वार्षिक शुल्क : 70 रुपये

द्विवार्षिक : 135 रुपये

त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)

अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

★विशेष आर्थिक क्षेत्र: सेज फूलों की या कांटों की?	पुष्पेश पंत	4
★विशेष आर्थिक क्षेत्र: परिचय और संभावनाएं	अरविन्द कुमार मिश्र	6
★विशेष आर्थिक क्षेत्र: निर्यात-वृद्धि के शॉर्ट-कट	वेद प्रकाश अरोड़ा	9
★विशेष आर्थिक क्षेत्र: विकास या भूमि हड़प	रमेश कुमार दुबे	12
★भारत में सजी सेज की बगिया	पूनम द्विवेदी	15
★विशेष आर्थिक क्षेत्र: ग्रामीण विकास में सहायक	जय सिंह	19
★विश्व व्यापार संगठन	पुष्पेश पंत	21
★विश्व व्यापार संगठन: सहमतियां और मतभेद	आलोक कुमार तिवारी	24
★विश्व व्यापार संगठन: भारतीय कृषि के समक्ष चुनौतियां	अशोक कुमार सिंह	29
★विश्व व्यापार संगठन और भारतीय कृषि	अनीता मोदी	33
★विश्व व्यापार संगठन और विषमताएँ	आशुतोष कुमार पांडेय	36
★राष्ट्रीय किसान आयोग की रिपोर्ट	गिरीश चन्द्र पाण्डे	38
★कृषि, कृषक और विसंगतियां: किसान आत्महत्या	रमेश कुमार दुबे	40
★कृषि क्षेत्र में उभरती चुनौतियां	पी ए शेषन	45
★दम तोड़ती ज़िंदगी का सच	कन्हैया त्रिपाठी	46
★किसानों के कर्जे और आत्महत्याएं	निर्मल संधू	48
★नैतिक मूल्यों की आदर्श प्रतिमूर्ति लाल बहादुर शास्त्री	गोपालसिंह बिष्ट	49
★सरस 2006	साजिया आफरीन	51
★क्या संभव है गांवों का विकास?	विवेक देवराय	52
★सरस – लघु उद्यमियों के लिए एक सुनहरा अवसर	अर्चना सूद	53
★कृषि ऋण और "मार्गदर्शिका"	कमलेश कुमार	55

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

मत-सम्मत

मैं 'कुरुक्षेत्र' का नियमित पाठक हूं। सितंबर 2006 का अंक पढ़ा, जो शिक्षा पर केंद्रित था। स्वतंत्रता के पांच दशक बाद देश के शैक्षिक वातावरण में परिवर्तन तथा देश में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में परिवर्तन के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर गठित शैक्षिक आयोगों, समितियों एवं राष्ट्रीय स्तर के शैक्षिक आयोजनाओं तथा राज्य सरकारों के प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के लिए किये गये शैक्षिक प्रयासों के बारे में व्यापक स्तर पर जानकारी मिली।

'प्राथमिक शिक्षा' विजन 2020' के शिक्षा के भावी योजनाओं एवं लक्ष्यों को जानकर खुशी हुई।

धर्मेन्द्र सिंह यादव, इलाहाबाद

शिक्षा पर आधारित सितंबर का अंक हस्तगत हुआ। शिक्षा पर आधारित सभी लेख सराहनीय लगे। शिक्षा से संबंधित विभिन्न लेखों में लेखकों ने शिक्षा के महत्व, स्त्री शिक्षा के लाभ, शिक्षा और संस्कृति, शिक्षा एवं चरित्र निर्माण, शिक्षा एवं जनसंख्या समस्या आदि की विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण और व्याख्या की है। जहां एक ओर 14 प्रतिशत पीएचडी बेरोजगार घूमते हैं तो शिक्षा एवं शिक्षा व्यवस्था के मूल्यांकन की जरूरत महसूस होती है। आज हमारी आने वाली पीढ़ी को इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, जो उसके खोये हुए आत्मबल को वापस लौटाते हुए, स्वावलंबी और स्वरोजगारी बना सके। जिससे आने वाली पीढ़ी रोजी-रोटी कमाते हुए देश के विकास में सहयोगी बने। आज देश और प्रदेश स्तर पर शिक्षा में एकरूप न होने के कारण देश और प्रदेश के विश्व विद्यालय/विद्यालय डिग्री बांटने की दुकान बन कर रह गये हैं। कहीं शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, तो कहीं हिंदी, जिस कारण हिंदी और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। अधिकांश कला एवं विज्ञान स्नातक एवं परास्नातक उत्तीर्ण शिक्षित युवा कायदे से प्रार्थना पत्र तक नहीं लिख पाते हैं। वहीं गांव का गरीब व्यक्ति इस आशा से खून पसीने की कमाई लगाकर जब अपने बच्चे को पढ़ाता है कि पढ़-लिखकर उसका बच्चा अच्छी नौकरी करेगा, जिससे उसके और उसके परिवार के जीवन में खुशहाली आयेगी। लेकिन अधिकांशत: ऐसा नहीं होता है जिस कारण वह व्यक्ति निराशा का शिकार हो जाता है ऊपर से उसका तथाकथित पढ़ा बच्चा हर काम को छोटा समझता है और उस बच्चे को सिर्फ शिक्षित बेरोजगार होने का देश झेलना पड़ता है जिस कारण समाज में अपराध बढ़ते हैं जिससे देश में अराजकता फैलने की संभावना बढ़ती है। अत: आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो आने वाली पीढ़ी को आत्मसम्मान के साथ अपने पैरों पर खड़ा होना सिखा सके।

हरि मोहन त्रिपाठी टीपू, कानपुर

'कुरुक्षेत्र' का नवंबर 2006 अंक पढ़ा बेहद पसंद आया। पत्रिका का नियमित पाठक हूं। पत्रिका का हर नया अंक बेहद अच्छा लगता है। पत्रिका के सारे लेख काफी अच्छे लगते हैं। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री मीरा कुमार का लेख काफी रोचक एवं ज्ञानवर्धक साबित हुआ। कुरुक्षेत्र पत्रिका हमारे जीवन का एक अहम हिस्सा है। पत्रिका के हर नये अंक का बेसब्री से इंतजार रहता है। पत्रिका का आवरण उज्ज्वल भविष्य की ओर काफी अच्छा लगा। मैं भी एक ग्रामीण छात्र होने के जाते ग्रामीण विकास से संबंधित विषय वस्तुओं को पसंद करता हूं।

अमन खान गौरी खकसीस, जिला जालौन

ठीक समय पर, ठीक प्रकार से किया गया ठीक काम ही सार्थक होता है। आपने नवंबर 2006 का अंक बालकों, बालश्रमिकों, भाग्यविधायिका लड़कियों को समर्पित करके वास्तव में 'उज्ज्वल भविष्य की ओर' एक सार्थक व समयानुकूल कदम उठाया है, साधुवाद। अपनी पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' चूंकि एक सरकारी पत्रिका है इसलिए इसका एक स्तर, एक गरिमा और एक सीमा है। इन मापदण्डों का आदर करते हुए भी जैसे आप गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका एवं कार्य का दिशानिर्देश करते हैं वैसे ही यदि सामाजिक घटकों को भी हिस्सेदारी दे तो कार्यक्रमों को सहयोग मिल सकता है। उदाहरण के लिए पहले सेठ-साहूकार सामाजिक क्षेत्रों में मुक्त हस्तदान देते थे। बाल मजदूरों के शिक्षण एक पुनर्वास में ये कैसे सहायक सिद्ध हो सकते हैं हमारे समाज में साधुओं-संतों-धर्मोपदेशकों का एक बहुत बड़ा परजीवी किंतु प्रभावशाली समूह है, इसे बेकार में बह कर समुद्र में जाते पानी का राष्ट्रीय विकास में कैसे उपयोग हो सकता है इस पर स्वतंत्र लेख देने के साथ जहां-जहां पर उपयोगी हो सकते हैं वहां-वहां उल्लेख कर दें तो पाठकों के लिए हितकर होगा। पुन: समयोचित अंक के लिए धन्यवाद।

ठाकुर सोहन सिंह भदौरिया, बीकानेर

मासिक पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' की श्रेष्ठ सामग्री, मनोहारी कलेवर देखकर बड़ा आनन्द आया। किन शब्दों में प्रशंसा करूं समझ में नहीं आता। बच्चों की शिक्षा को समर्पित इस अंक में उच्चकोटि के प्रतिष्ठित विद्वानों के आलेख आपने प्रकाशित करके महान कार्य किया है। श्री अशोक कुमार, के. के. खुल्लर, अभिषेक रंजन सिंह उमेश चन्द्र अग्रवाल, राकेश जैन, आरती, अजय सिन्हा के आलेख पठनीय हैं। इतने सुन्दर प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई।

डॉ. हरिप्रसाद, फैजाबाद

ग्रामीण विकास को समर्पित मासिक पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' का दस वर्षों से नियमित पाठक रहा हूं। लेकिन नवम्बर 06 माह के पत्रिका के विशेष आलेख पढ़ने को मिले। जो बच्चों का कल्याण एवं बाल विकास से सम्बन्धित सभी लेख उत्कृष्ट व ज्ञानवर्धक हैं।

सुजीत कुमार

मैं 'कुरुक्षेत्र' पत्रिका का नियमित पाठक हूं। मैं कई वर्षों से इस पत्रिका की विषयवस्तु, इसके कम मूल्य का कायल रहा हूं। कुछ अंकों की आवरण सज्जा, आवरण चित्र और आवरण उक्ति ने विशेष रूप से आकर्षित किया। नि:संदेह इतनी खूबसूरत सामग्री के साथ उच्च स्तरीय लेखन का आनंद ही अलग होता है और पाठक को हर रूप से इस पत्रिका से बांधे रखता है। दिसंबर 2006 की कुरुक्षेत्र में वर्ष भर की सभी कुरुक्षेत्र का आवरण पृष्ठ एक पर चित्रित करना सराहनीय प्रयास है। अगर आपके आवरण पृष्ठों के हिसाब से कहें तो भारतीय अर्थव्यवस्था में इस भूमंडलीकरण के दौर में भी जबकि बढ़ती हुई जनसंख्या का वर्तमान और भविष्य कैसा होगा यह एक बड़ा सवाल है तो कुरुक्षेत्र के माध्यम से महिलाएं नई दिशा की ओर, श्रम और श्रमिकों का विकास और बच्चे उज्ज्वल भविष्य की ओर उन्मुख होंगे और साथ ही मानवाधिकार और पंचायतीराज के माध्यम से ही भारत निर्माण हो सकेगा।

एक जागरूक पाठक

नव वर्ष 2007

हमारे सभी
पाठकों, लेखकों
तथा एजेंटों को
नव वर्ष
2007
की हार्दिक शुभकामनाएं

विशेष आर्थिक क्षेत्र
सेज फूलों की या कांटों की?

पुष्पेश पंत

हाल के दिनों में देश के कुछ हिस्सों में विशेष आर्थिक क्षेत्रों (स्पेशियल इकॉनोमिक जोन) की स्थापना के प्रस्ताव ने खासी गर्म बहस को जन्म दिया है। इसके समर्थकों का दावा है कि इस तरह की पहल के बिना आर्थिक सुधारों को अगले चरण तक पहुंचाना और उन्हें गतिशील बनाये रखना संभव नहीं है। उनकी नजर में चीन का अनुभव हमें यही सबक सिखलाता है कि फोन्जेन जैसे 'सेज' कितनी आसानी से आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हैं और निरंतर उसकी रफ्तार तेज रखते हैं। अगर भारत को भूमंडलीकरण के इस दौर में चीन का मुकाबला करना है, पिछड़ने से बचना है तो बिना सेज के काम नहीं चल सकता। इस खेमे के सबसे मुखर नेता हैं वाणिज्य मंत्री कमलनाथ। कमलनाथ विश्व व्यापार संगठन (डब्लू टी ओ) में भारत के आर्थिक हितों के लिए लड़ाई बड़े जीवट से लड़ते रहे हैं और इस क्षेत्र में उनका राजनीति कौशल उल्लेखनीय है। इसीलिए उनके पेश किए तर्क कोई भी आसानी से खारिज नहीं करता। विडंबना यह है कि विशेष आर्थिक क्षेत्रों का विरोध सिर्फ भूमंडलीकरण और विश्व व्यापार संगठन के पारंपरिक आलोचक वाम पंथी दल ही नहीं कर रहे हैं बल्कि स्वयं आमतौर पर उनका साथ देने वाले तेजश्वी और दक्षिणपंथी रूझान वाले वित्त मंत्री चिदंबरम् ही कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही पक्ष न तो पूरी तरह सही हैं और न पूरी तरह गलत। इस विषय पर खुले दिमाग से ईमानदार पड़ताल की और जनतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप संतुलित संवाद की जरूरत है।

सतही स्तर पर जो बहस चल रही है वह सरलीकरणों पर टिकी है और उसे पूरी तरह पूर्वाग्रह मुक्त नहीं समझा जा सकता। एक बार फिर देश के देहाती किसानों को आर्थिक प्रगति की राह में सबसे बड़ा रोड़ा परोक्ष रूप से ही सही बतलाया जा रहा है। यह बात गले से नीचे उतारना कठिन है की भविष्य में भारत का उदय एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में सिर्फ उद्योगपतियों और टेक्नोलौजी का प्रयोग करने वाले उत्पादकों और सेवाएं-सुविधाएं बेचने वालों के पराक्रम से ही हो सकता है। इस तर्क में यह जोखिम भी छिपा हुआ है कि गांवों और शहरों के बीच की दर्दनाक खाई और भी गहरी और न पाटी जा सकने वाली बन जाएगी। इस बात को नजरंदाज करना कठिन है कि करीब डेढ़ दशक पहले जबसे आर्थिक सुधारों का सूत्रपात हुआ है तभी से भारतीय खेतीबारी और किसानों की जिन्दगी खस्ता हाल होती रही है। देश के कई संपन्न समझे जाने वाले सूबों में किसान आत्महत्या करने को मजबूर हुए हैं और करीब तीन दशक के अंतराल के बाद भारत को खाद्यानों का आयात करना पड़ा है। यहां इन मुद्दों पर विस्तृत टिप्पणी की गुजाइंश नहीं पर इस बात को रेखांकित करना जरूरी है कि विशेष आर्थिक क्षेत्रों को लेकर ग्रामीण भारत की और खेतिहरों की चिंताएं बेबुनियाद कतई नहीं समझी जा सकती। जितने अचानक इस प्रस्ताव की घोषणा हुई है और जितने अदभूदर्शी उतावली के साथ इसे लागू करने की जल्दबाजी नजर आ रही है उसे देखते कोई भी अपने को निरापद नहीं समझ सकता। इसका एक अच्छा उदाहरण उत्तर प्रदेश प्रस्तुत करता है जहां रिलाइंस समूह के अंबानियों को राजधानी के निकट एक सेज के निर्माण के लिए कई हजार हेक्टेयर जमीन सुलभ कराई गई है। इसी समूह को हरियाणा में भी बड़े पैमाने पर ऐसे ही एक और विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना के लिए आमंत्रित किया गया है। दोनों ही राज्यों में प्रभावित किसानों में इस प्रस्ताव के विरूद्ध काफी आक्रोश है और वह आंदोलन की राह पर उतर आए हैं। इन किसानों के पूर्व प्रधानमंत्री वी.पी.सिंह का पूरा समर्थन प्राप्त है और अभी हाल तक मुलायम सिंह के साथी रह चुके राजबब्बर अब उनके कट्टर आलोचक बन चुके हैं।

एक ओर किसानों को आशंका है कि औने-पौने मुआवजे पर ही अपनी जमीन वह मिट्टी के मोल गवां देंगे और भविष्य में आजिविका का कोई भरोसेमंद साधन उनके पास अपना पेट पालने को नहीं बचा रहेगा। यह बात सरकार साफ कह चुकी है कि सभी के लिए मुआवजे की राशि एक नहीं हो सकती यह तो जमीन की मिल्कियत, (उसके आकार) और उसकी गुणवत्ता के अनुसार ही होगी। अबतक राजधानी के निकटवर्ती क्षेत्र में भूस्वामियों को भूमाफिया की अंधेर गर्दी का कम से कम आंशिक लाभ मिलता रहा है। नोएडा हो या गुड़गांव अपनी जाति-बिरादरी के बाहुबलि नेताओं या भ्रष्ट आला अफसरों के सहयोग से इन इलाकों में लठैत-बकैत किसानों की बनाई थी और दूसरों की जमीनों पर नाजायज कब्जे और उनकी दो बार तीन बार बिक्री कर जाने कितने कुटीर उद्यमी अरबपति बन चुके हैं। अब विश्व स्तरीय स्वदेशी पूंजीपतियों और चोटी पर बैठे उदारपंथी नेताओं की सांझेदारी उनकी हस्ती नेस्तनाबुद करती नजर आ रही है। एक बात और, जमीन का मुआवजा भू-स्वामी को ही वह भी सिर्फ एक बार मिल सकता है। इस जमीन पर काम करने वाले उसकी फसल से पेट पालने वाले भूमिहीन किसान मजदूरों को इस मुआवजे का शतांश भी नसीब होने वाला नहीं है। इस घड़ी उनकी चिंता किसी को नहीं।

वित्त मंत्रालय को सेज से आपत्ति है तो बिलकुल दूसरे कारणों से। उसका अनुमान है कि 2012 तक इस परियोजना के कारण सरकार को लगभग 16 खरब रुपयों का नुकसान उठाना पड़ेगा राजस्व हानि के रूप

में। उद्यमी-उत्पादकों को इन इलाकों में आकर्षित करने और पूंजी लगाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें तरह-तरह की छूट की योजना है। 5 साल तक वह पूरी तरह आयकर से मुक्त रहेंगे और इसके बाद वाले 5 वर्ष में अपनी उस कमाई पर आयकर देने की माफी पायेंगे जो उन्होंने निर्यात से कमाई हो और जिसका पुनर्निवेश इन्हीं इलाकों में किया हो। और भी अनेक करों सीमा शुल्कों और उत्पाद शुल्क आदि से छुटकारे का प्रस्ताव है। दूसरी तरफ वाणिज्य मंत्रालय का मानना है कि इसी काल में पूंजी निवेश से करीब दस खरब रुपया कमाया जा सकेगा और आधारभूत ढांचे में जो सुधार होगा उसका लाभ सभी को मिलेगा- विशेष आर्थिक क्षेत्र से बाहर रहने वालों को भी। इसके साथ ही कमलनाथ और उनके विशेषज्ञ सलाहकार यह भी सुझाते नहीं थकते कि आखिर जब भारत में समृद्धि बढ़ेगी तो उसका रिसाव नीचे की तरफ निरंतर होता रहेगा और सभी को रोजगार के बेहतर मौके मिलेंगे और उनके जीवन यापन के स्तर में सुधार होगा। वित्त मंत्रालय की और प्रधानमंत्री कार्यालय की योजना आयोग के साथ-साथ कठिनाई एक जैसी है। आर्थिक क्रियाकलाप में सरकारी हस्तक्षेप को नकारने वाले, बाजारतंत्र को सर्वोपरि मानने वाले इस वक्त यह कैसे कह सकते हैं कि पूंजी का निवेश और उद्यमियों का प्रवेश वहां नहीं होना चाहिए जहां वह जाने को उत्सुक है?

मजेदार बात यह है कि उत्तर प्रदेश जैसे महत्वपूर्ण राज्यों में चुनाव सर पर है। केंद्र सरकार के लिए और राज्य सरकार के लिए यह मजबुरी समान है कि वह अपनी नीतियों को गरीबों के हित में प्रमाणित कर सके और आर्थिक सुधारों के मानवीय चेहरे को विश्सनीय रूप से उजागर कर सके। कोई भी यह खतरा नहीं उठा सकता कि चुनाव अभियान के दौरान उसपर भूमंडलीकरण के दानव के सामने घुटने टेकने का आरोप लगा सके। एक विचित्र बात यह भी है कि इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों की मांग देश के उन्हीं राज्यों और इलाकों से आ रही है जो पहले से ही गतिशील हैं और पिछड़े नहीं समझे जा सकते। उत्तर प्रदेश को अपवाद नहीं समझा जा सकता क्योंकि जो हिस्सा विवादग्रस्त है वह राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के रूप में ही पहचाना जाता है और बाकी उत्तर प्रदेश से उसका नाता रिश्ता (जातिवादी हिंसक राजनीति को छोड़कर नहीं के बराबर बचा है)। नोएडा और ग्रेटर नोएडा हों या फरीदाबाद और गुड़गांव सभी हिन्दुस्तानियों के लिए दिल्ली के उपनगर हैं। कर्नाटक आंध्रप्रदेश महाराष्ट्र और पंजाब के बारे में तो यह स्थिति और भी साफ है। इस बात को दोहराना इसलिए जरूरी है कि यह बात उजागर कि जा सके कि विशेष आर्थिक क्षेत्रों की प्रस्तावित योजना से देश में व्याप्त आर्थिक असंतुलन आने वाले वर्षों में कितना वीभत्स और विस्फोटक रूप ले सकता है। इस बात को स्वीकार करना सहज नहीं कि इन क्षेत्रों में जो स्मृद्धि पैदा होगी उसमें आम नागरिक की कोई सांझेदारी कभी हो सकेगी। रोजगार के अवसर हो या आधारभूत सुविधाओं में सुधार आज भी जहां कहीं ऐसे उत्कृष्ट द्वीप नजर आते हैं उनके इर्द-गिर्द दरिद्रता और अराजकता का सर्वनाशक सागर सुनामी की लहरें उठाता दिखता है। कुछ दशक पहले इसी तरह की लुभावनी कर छूटों और मनमोहक सुविधाओं सहुलियतों वाले निर्यात प्रोत्साहत विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना की गई थी। उनकी कलई खुलते ज्यादा देर नहीं होगी। इनका उपयोग हुनरमंद उद्यमियों ने कर चोरी और कानूनी तस्करी के लिए बहरहाल मनमाने ढंग से किया। आम आदमी के मन में यह डर पैदा होना स्वाभाविक है कि इस बार भी कल्पना से क्रियान्वयन तक जो फेरबदल होगा वह उसके हितों में नहीं होगा।

विशेष आर्थिक क्षेत्रों के संदर्भ में एक और डर लोगों के मन में है खासकर मजदूरों के। अंतरराष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता को हासिल करने के लिए और कार्यकुशलता को निरंतर बढ़ाते जाने के लिए इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों में श्रमिकों को कड़े अनुशासन में रखने की बात की जा रही है। दूसरे शब्दों में भरती करने और बर्खास्त करने के बारे में उद्यमी खुला हाथ चाहते हैं। तब क्या यह समझा जाए कि देश के श्रम कानून जो मजदुरों के मददगार हैं यहां लागू नहीं होंगे? पिछले कुछ सालों कई बड़ी कंपनियां और बहुराष्ट्रीय निगम पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले अपने गैर जिम्मेदारना आचरण के कारण भी कठघरे में खड़े किये जाते रहे हैं। प्रतिष्ठित पर्यावरण संगरक्षक संस्था सेंटर फॉर साइंस एण्ड इनवायरमेंट ने यह सवाल भी उठाया है कि क्या इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों में काम करने वाली इकाईयों पर पर्यावरण परक प्रतिबंध भी लचीले और मुनाफाखोरी के मनमाफिक बनाए जायेंगे। अपने देश में व्याप्त सामंतिक मानसिकता को ध्यान में रख कुछ और सवाल भी उठाये जा सकते हैं। इन देश के भीतर विदेश जैसे स्वरूप एवं चरित्र वाले भौगोलिक इलाके में क्या अन्य छोटे बड़े अपराधों कानून और व्यवस्था विषयक मुद्दों पर वैधानिक और व्यावहारिक स्तर पर कितना फर्क स्वीकार बर्दाश्त किया जा सकता है। दसेक साल में अकुश संपत्ति के मालिक पहुंच वाले ताकतवर लोग जघन्य अपराध में प्रत्यक्षतः लिप्त होने के बाद भी कानून की पहुंच से बाहर घुमते रहे हैं। अपनी जागिर में उन पर हाथ डालने का दुस्साहस कौन ईमानदार अदना अधिकारी कर सकता है पुंजीवाद का शास्वत सत्य कुछ और ही कहता है हर आदमी की कीमत होती है बस आपको यह पता होना चाहिए कि वह किस कीमत पर बिकेगा।

यह सोचने वाले भी नादान ही समझे जा सकते हैं कि इस प्रस्ताव से बड़े पैमाने पर रोजगार पैदा होगा या फिर अत्याधुनिक टक्नोलौजी का आयात आसान हो जाएगा। आई.टी उद्योग की बहुत जोशो-खरोश से बखाने जाने वाली उपलब्धियां यही सबक सिखलाती है कि मुट्ठी भर लोग भले ही अरबपति-खरबपति बन गये हों भारत के बेरोजगारों की फौज में से सिर्फ शून्य दसमलव एक या दो प्रतिशत जवान ही इन साईबर बस्तियों या कॉल सेंटरों में खप पाये हैं। रही बात टेक्नॉलौजी की तो फिर एक बार यह बात याद दिलाने की जरूरत है कि सूचना क्रांति हो या बायोटेक्नॉलोजी भारत की भागीदारी सीमांती शोध के स्तर पर नहीं बल्कि साइबर मजूरी के मैदार पर ही दिखती है और बायोटेक्नोलौजी के क्षेत्र में भी नई पेटेंट प्रणाली अपनाने के बाद से हमारे नक्काल कौशल की पोल खुल चुकी है। ज्यादा संभावना इसी बात की है कि निर्यात प्रोत्साहित क्षेत्रों की तरह इस बार भी असलियत उंची दुकान और फीका पकवान जैसी रहेगी या फिर हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और वाली चरितार्थ होगी।

जो लोग सीधे-सीधे स्पेशल इकॉनोमिक जोन से फायदा उठाने जा रहे हैं उनको छोड़कर किसी और का साहस इस प्रस्ताव का समर्थन करने का नहीं हुआ है। राहुल बजाज जैसे दो टुक बात करने वाले और उद्यमी पूंजीपतियों के हिमायती राहुल बजाज तक को यह सुझाव नागवार गुजरा है। उनकी राय

शेष पृष्ठ 8 पर ...

विशेष आर्थिक क्षेत्र
परिचय और संभावनाएं

अरविन्द कुमार मिश्र

आजादी के पश्चात भारत की व्यापार नीति का मुख्य जोर आयात प्रतिस्थापन पर रहा। हमारी प्राथमिकता अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को देश में ही उत्पन्न करने की रही। इस नीति का हानिकारक पहलू यह रहा कि हम निर्यात के क्षेत्र में पिछड़ गये। उपभोक्ता वर्ग शेष विश्व में हो रही तकनीकी प्रगति से वंचित रह गया। औद्योगिक क्षेत्र में अपेक्षित रोजगार सृजन भी नहीं हो सका। परन्तु इस परिदृश्य में 1991 में नवीन आर्थिक नीतियों को अपनाये जाने के बाद परिवर्तन आया। आर्थिक प्रगति की इच्छित गति की प्राप्ति के लिये निर्यात संभावनाओं के दोहन पर ध्यान केंद्रित किया गया। साथ ही आर्थिक प्रगति के लिये बड़ी मात्रा में संसाधन एकत्र करने की आवश्यकता भी महसूस की गयी।

आर्थिक सुधारों के प्रारंभ के लगभग एक दशक बाद एक महत्वाकांक्षी प्रयास के रूप में विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) की स्थापना की योजना प्रस्तुत की गयी। सर्वप्रथम ये विचार तत्कालीन वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन ने 1 अप्रैल, सन् 2000 में प्रस्तुत किये। एसईजेड या सेज की स्थापना के पीछे मुख्य लक्ष्य देश में विभिन्न रुकावटों से मुक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर का प्रतिस्पर्द्धी वातावरण उपलब्ध कराना था जिससे निर्यातों में वृद्धि तथा रोजगार का सृजन हो सके।

एसईजेड देश की घरेलू सीमा के भीतर स्थित ऐसा विशिष्ट शुल्क मुक्त क्षेत्र है जिसे व्यापार संचालन, शुल्क तथा प्रशुल्कों की दृष्टि से विदेशी क्षेत्रों के समान माना जाता है। इन विशिष्ट प्रावधानों के अंतर्गत यदि कोई वस्तु एसईजेड से घरेलू व्यापारिक क्षेत्र के लिए आयात माना जायेगा। इसी प्रकार यदि कोई वस्तु एसईजेड में आती है तो इसे घरेलू व्यापारिक क्षेत्र के लिये निर्यात माना जायेगा।

ऐसे क्षेत्र में आने वाली किसी भी वस्तु पर कोई शुल्क देय नहीं होता, चाहे वह वस्तु घरेलू व्यापारिक क्षेत्र से प्राप्त की गयी हो अथवा किसी अन्य देश से आयातित की गयी हो।

एसईजेड मुख्य दो प्रकार के होते है-

• बहु-उत्पाद एसईजेड • एकल-वस्तु एसईजेड

बहु उत्पाद एसईजेड का न्यूनतम क्षेत्रफल 1000 हैक्टेयर होता है। एकल वस्तु एसईजेड का क्षेत्रफल 100 हैक्टेयर होता है। एसईजेड में 10 हैक्टेयर क्षेत्रफल के मिनी जोन भी शामिल हैं। सेज की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र, संयुक्त रूप से, राज्य सरकार या उसकी एजेंसी द्वारा की जा सकती है। विदेशी कंपनियां भी एसईजेड की स्थापना कर सकती है। एसईजेड संबंधी प्रावधानों के अनुसार देश में पहले से स्थापित निर्यात संवर्द्धन गृहों को विशेष आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तित किये जाने की सुविधा उपलब्ध है। कांडला, सांताक्रूज, सूरत, कोचीन, फाल्टा, चेन्नई, विशाखापट्नम और नोएडा में स्थित विशेष आर्थिक क्षेत्र उसी प्रकार से निर्मित हैं।

एसईजेड निर्माण संबंधी नियमों के अनुसार जोन के न्यूनतम पैंतीस प्रतिशत भाग पर औद्योगिक और उत्पादन गतिविधियों का होना अनिवार्य है। शेष भूमि पर जोन विकासकर्ता को आवासीय क्षेत्र, स्कूल, बाजार, खेल के मैदान, आदि बनाने के अधिकार प्राप्त है। बड़े आकार के एसईजेड में निर्बाध परिवहन की सुविधा हेतु हवाई अड्डे एवं हैलीपैड के निर्माण की अनुमति है। एसईजेड में ऊर्जा के उत्पादन, पारेषण तथा वितरण संबंधी सभी अधिकार विकासकर्ता को प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त जोन विकासकर्ता को जोन में परिवहन, संचार या सुरक्षा जैसी सुविधायें प्रदान करने तथा उनके रखरखाव का अधिकार प्राप्त है।

इसके अलावा सरकार ने एसईजेड विकासकर्ताओं को प्रोत्साहन प्रदान करते हुए निम्नलिखित अन्य छूटें भी प्रदान की हैं-

- एसईजेड क्षेत्रों में आवासीय सुविधा, शैक्षिक एवम् अनुसंधान सुविधाओं से युक्त टाउनशिप विकास हेतु स्वचालित मार्ग से शत प्रतिशत विदेशी निवेश की सुविधा
- एसईजेड विकासकर्ताओं को स्थापना के प्रथम 15 वर्षों में किन्ही दस वर्षों हेतु आयकर पर छूट
- एसईजेड में निवेशित आधारभूत पूंजी फंड तथा वैयक्तिक निवेश पर प्राप्त आय पर आयकर से छूट
- एसईजेड इकाइयों को घरेलू व्यापार क्षेत्र से कच्चे माल, पूंजीगत वस्तुओं, उपकरणों, कार्यालय प्रयोग की वस्तुओं, उपभोग वस्तुओं आदि की प्राप्ति बिना किसी लाइसेंस या विशिष्ट अनुमति के। इन प्राप्तियों पर कोई शुल्क भी देय नहीं।
- एसईजेड इकाइयों को आयात हेतु किसी भी प्रकार के लाइसेंस की आवश्यकता नहीं।
- एसईजेड से प्राप्त आय पर प्रथम 5 वर्षों में शत-प्रतिशत तथा अगले 2 वर्षों में पचास प्रतिशत छूट
- एसईजेड में ऑफशोर बैंकिग इकाइयों की स्थापना की अनुमति
- एसईजेड द्वारा प्रतिवर्ष अधिकतम 500 मिलियन डालर बाह्य ऋण प्राप्ति की अनुमति (बिना किसी परिपक्वता शर्त के)
- निर्यात आय तथा इसकी विदेशी में निवेश संबंधी छूट
- सभी एसईजेड इकाइयों को बिक्रीकर टर्नओवर कर, मूल्य वर्द्धित

कर चुंगी, मंडी शुल्क, स्टाम्प डयूटी, विद्युत अधिभार या किसी भी अन्य प्रकार के राज्य सरकार के टैक्स से छूट।

- किसी एसईजेड को अन्य एसईजेड को वस्तुओं अथवा सेवाओं की खरीद या बिक्री की छूट। ऐसे सौदों का भुगतान विदेशी मुद्रा में किया जाता है।

उपरोक्त छूटों के अतिरिक्त एसईजेड को आपूर्ति करने वाली घरेलू इकाइयों को भी विभिन्न छूटें प्राप्त होती है। घरेलू व्यापारिक क्षेत्र से एसईजेड की गई आपूर्ति को भौतिक निर्यात के रूप में माना जाता है। आपूर्तिकर्ता को आयकर तथा केंद्रीय बिक्रीकर पर छूट के साथ ही अन्य छूटें भी प्राप्त होती है।

इन छूटों का मुख्य उद्देश्य निजी क्षेत्र को एसईजेड स्थापना हेतु प्रोत्साहित करना था। यह नीति कारगर सिद्ध हुई है। वर्तमान समय में निजी क्षेत्र एसईजेड की स्थापना में बढ़-चढ़कर हिस्सा हो रहा है। एसईजेड की स्थापना हेतु सरकार द्वारा आवश्यक दिशानिर्देश निर्धारित किये गये हैं।

एसईजेड की स्थापना के लिए आवश्यक जानकारियों के साथ आवेदन पत्र राज्य सरकार के मुख्य सचिव के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। राज्य सरकार इस आवेदन को अपनी आवश्यक टिप्पणी के साथ वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार के पास भेजती है। यहां आवेदन पर एक मंत्रिस्तरीय समिति विचार करती है। विचारोपरांत आवेदन स्वीकृत होने की दशा में आवेदक को स्वीकृति पत्र निर्गत कर दिया जाता है।

एसईजेड की स्थापना हेतु आवश्यक आधारभूत संरचना तथा आरंभिक रखरखाव में राज्य सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एसईजेड में उत्पादन, व्यापार अथवा सेवा इकाई की स्थापना की आज्ञा एक समिति प्रदान करती है। इस समिति का प्रमुख विकास आयुक्त होता है।

किसी एसईजेड में केवल उन्हीं इकाइयों की स्थापना हो सकती है जो इस योजना के तहत स्वीकृत हैं। एसईजेड पर शेष देश के समान सामान्य श्रमिक कानून लागू होते हैं। इन कानूनों के अनुपालन की जिम्मेदारी संबंधित राज्य सरकार की होती है। एसईजेड पर सामान्य बैंकिंग तथा शेयर बाजार संबंधी कानून लागू होते हैं।

एसईजेड इकाइयों के लिये यह बाध्यकारी होता है कि वह शुद्ध-रूप से विदेशी मुद्रा अर्जक हो। यह गणना उत्पादन प्रारंभ होने के बाद 5 वर्ष की अवधि के लिये होती है।

भारत में वर्तमान परिस्थितियों विशेष आर्थिक क्षेत्रों के विकास हेतु अनुकूल सिद्ध हो रही हैं। 23 जून, 2005 को एसईजेड विधेयक पारित होने तथा फरवरी, 2006 में नियमों की अधिसूचना जारी होने के बाद ऐसे क्षेत्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। सितंबर 2006 तक 150 एसईजेड औपचारिक रूप से तथा 117 सैद्धांतिक रूप से स्वीकृत किये जा चुके हैं। एसईजेड में निहित संभावनाओं को भारतीय अर्थ व्यवस्था की विभिन्न समस्याओं के निदान के रूप में देखा जा रहा है। एसईजेड बड़ी संख्या में रोजगार सृजन कर सकते हैं। वाणिज्य मंत्रालय के अनुमान के अनुसार यदि आगामी 3 वर्षों में एसईजेड हेतु 1 लाख करोड़ रुपये का अपेक्षित निवेश हुआ तो उससे 5 लाख से अधिक रोजगारों का सृजन संभव होगा। एसईजेड में विदेशी मुद्रा अर्जन की भारी संभावनायें है। वर्ष 2004-05 में एसईजेड द्वारा कुल 4 अरब डॉलर का निर्यात हुआ, वहीं 2005-06 के प्रथम 9 महीनों में वह राशि 3.5 अरब डॉलर रही। एसईजेड में प्राप्त सुविधाओं के फलस्वरूप भारतीय निर्यात अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी एवम् गुणवत्तायुक्त हो सकेंगे। साथ ही यह क्षेत्र विदेशी निवेश को आकर्षित करने हेतु उचित माहौल तथा आवश्यक स्तरीय आधारभूत संरचना प्रदान करेगा। एसईजेड की सहायता से निर्माण क्षेत्र एवम् सेवा क्षेत्र की पूर्ण संभावनाओं का दोहन संभव हो सकेगा।

एसईजेड परिकल्पना का प्रयोग कुछ सुधरे हुये प्रावधानों के साथ कृषि क्षेत्र के उत्थान के लिये किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि हमारे देश की आधे से अधिक आबादी कृषि कार्यों में संलग्न है। परंतु इस क्षेत्र की लगातार बिगड़ती दशा चिंता का विषय है। कृषि का राष्ट्रीय आय में हिस्सा लगातार कम होता जा रहा है। अधिकांश कृषक गरीबी की दशा में जीवनयापन कर रहे हैं। यद्यपि हरितक्रांति से स्थिति में कुछ सुधार हुआ था। परंतु इसके लाभ एक क्षेत्र विशेष तथा वर्ग विशेष तक ही सीमित रहे।

वर्तमान एसईजेड में सृजित होने वाले रोजगारों का उपयोग कृषि क्षेत्र के बेरोजगारों को रोजगार देने में किया जा सकता है। इससे कृषि क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोजगारी को कम किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त एसईजेड में कृषि एवम् बागवानी संबंधी इकाइयां स्थापित करने का प्रावधान है। इन इकाइयों को यह छूट प्राप्त है कि वह आगत तथा अन्य सामग्री घरेलू व्यापार क्षेत्र के संविदा कृषकों को प्रदान करें। ये आगतें तथा उत्पादन का स्वरूप आयातकर्ता देश की आवश्यकता पर निर्भर होगा। इस प्रकार एसईजेड की सहायता से घरेलू क्षेत्र में संविदा कृषि को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही कृषि फसलों का व्यापारीकरण एवम् विविधीकरण संभव होगा। इस प्रक्रिया से कृषि में तकनीकी सुधार भी संभव होगा।

परंतु ये कुछ कदम ही कृषि क्षेत्र के विकास के लिये पर्याप्त नहीं होंगे। सरकार को ऐसे प्रावधान करने चाहिये कि एसईजेड विकासकर्ता को प्रत्येक क्षेत्र में कृषि आधारित इकाई का विकास करना अनिवार्य हो। साथ ही प्रत्येक

भारत में एसईजेड की स्थापना का कदम चीन से प्रभावित बताया जाता है। चीन में एसईजेड की स्थापना सन् 1978 में की गयी थी। इनकी स्थापना भू स्वामित्व से जुड़े विवाद तथा श्रमिक समस्याओं से निपटने के लिये की गयी। चीन में 1978 से लेकर 1991 के मध्य पांच एसईजेड की स्थापना की गयी। वर्तमान में चीनी एसईजेड विदेशी निवेश को आकर्षित करने के मुख्य केंद्र बनकर उभरे हैं। चीन के कुल निर्यात का लगभग चालीस फीसदी एसईजेड के माध्यम से ही किया जाता है। भारत तथा चीन के एसईजेड के मध्य अक्सर तुलना की जाती है परंतु इनमें मूलभूत अंतर है। भारत के विपरीत चीन में एसईजेड पूर्णतया सरकारी नियंत्रण में है। चीन जैसे देश में गैर-कृषि योग्य भूमि बहुतायत में उपलब्ध है। साथ ही भारत की तुलना में चीन में भूमि अधिग्रहण संबंधी कानून भी हल्के या ढीले हैं। भारत में एसईजेड को विकास के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। एसईजेड उत्पादन और निर्यात में वृद्धि लाकर तथा रोजगार का सृजन करके आर्थिक विकास के उत्प्रेरक व वाहक होने का कार्य कर सकते हैं।

एसईजेड को आसपास के घरेलू क्षेत्र के कृषि उत्पादों की निर्यात संभावना तलाशने एवम् कृषि में तकनीकी सुधार की जिम्मेदारी दी जानी चाहिये। साथ ही एसईजेड से प्राप्त आय का एक हिस्सा कृषि क्षेत्र को आसान शर्तों पर ऋण के रूप में देने की बाध्यता होनी चाहिये। इस प्रकार से यदि नियमों में थोड़ा सा परिवर्तन लाया जाये तो विशेष आर्थिक क्षेत्र व्यापार के विकास के साथ-साथ कृषि विकास के वाहक बनने की भी क्षमता रखते हैं।

पिछले कुछ समय से एसईजेड के तेज विकास के साथ ही कई विवाद के बिन्दु भी उभर आये हैं। वस्तुत: पिछले कुछ समय से ऐसी प्रवृतियां उभरकर सामने आयी हैं जो चिन्ता का विषय बन गयी है। जिस तेजी से एसईजेड के लिये भूमि अधिग्रहण किया जा रहा है उससे कृषि हेतु उपजाऊ भूमि पर खतरा उत्पन्न हो गया है। कई क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण कर लिया गया है। भारत जैसे बड़ी जनसंख्या सदैव एक चुनौती रही है, ऐसा होना बहुत बड़ी गलती है। एसईजेड स्थापना हेतु कृषि योग्य भूमि के प्रयोग को रोका जाना चाहिये। इनके निर्माण हेतु केवल बंजर भूमि का प्रयोग किया जाना चाहिये। इस नियम का पंजाब तथा हरियाणा जैसे राज्यों में विशेष ध्यान देना चाहिये जहां 75-80 प्रतिशत भूमि उपजाऊ है। एसईजेड के संबंध में यह चिंता भी व्यक्त की जा रही है कि ये क्षेत्रीय विषमता को बढ़ा रहे हैं। यदि अभी तक की प्रवृत्ति को देखें तो अधिकांश एसईजेड की स्थापना तथा स्थापना संबंधी प्रस्ताव उन्हीं क्षेत्रों में हैं जो पहले से ही विकसित हैं। यदि ऐसा होता रहा तो पहले से ही उपस्थित क्षेत्रीय विषमता गंभीर रूप धारण कर सकती हैं। ऐसे में एसईजेड की सहायता से पिछड़े क्षेत्रों के विकास का लक्ष्य स्वप्न बनकर रह जायेगा।

सेज स्थापना के समय इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि जिस पक्ष की भूमि का अधिग्रहण हो उसे लाभदायी तथा प्रभावी पैकेज प्राप्त हो। प्रभावित पक्ष का बाजार दर से भूमि का मूल्य भुगतान, परिवार के एक सदस्य को एसईजेड में रोजगार, एसईजेड के शेयरों में हिस्सेदारी जैसे विकल्प प्रदान करने चाहिये। ऐसा करने से एसईजेड से लाभान्वित सामाजिक वर्ग के विस्तार में प्रभावी सफलता पायी जा सकेगी।

एसईजेड संबंधी एक अन्य ज्वलंत मुद्दा इन क्षेत्रों का व्यापारिक क्षेत्र के बजाय रियल इस्टेट क्षेत्र के रूप में विकसित होना है। अभी तक एसईजेड में भूमि उपयोग संबंधी प्रावधान विकासकर्ता को एक बड़े क्षेत्र में रियल इस्टेट का मौका देते रहे हैं। इन्हीं कारणों से रिजर्व बैंक ने भी एसईजेड को 'रियल इस्टेट' ही माना है तथा इन्हें दी जा रही वित्तीय रियायतें बंद कर दी हैं। इस विषय पर सरकार के नवीन प्रावधानों के अनुसार रियल एस्टेट तथा उत्पादन से इतर अन्य सुविधाओं का विकास कर्मचारियों की संख्या के अनुपात में ही किया जा सकेगा। परंतु इस विषय पर सरकार के और स्पष्ट दिशानिर्देश आवश्यक हैं। एसईजेड विकास में अब तक स्वीकारे गये प्रस्ताव मुख्यत: बड़े औद्योगिक घरानों के हैं। सरकार को इस बिन्दु पर ध्यान देना होगा कि एसईजेड व्यवस्था कहीं अप्रत्यक्ष रूप से एक नवीन लाइसेंस व्यवस्था का सूत्रपात न कर दें। एसईजेड व्यवस्था से बड़ी मात्रा में कर राजस्व की हानि की संभावना है। वित्त मंत्रालय के अनुसार अनुमानत: अगले पांच वर्षों में इस व्यवस्था में 1,75,000 करोड़ रुपये के राजस्व की हानि होगी। यद्यपि वाणिज्य मंत्रालय के अनुसार एसईजेड से अनुमानत: प्रति वर्ष 44,000 करोड़ रुपये का राजस्व प्राप्त होगा परंतु सरकार को ध्यान देना होगा कि इतनी अधिक राजस्व हानि से पोषित व्यवस्था का लाभ जन सामान्य तक पहुंचे, न कि एक विशेष क्षेत्र तथा विशेष वर्ग तक सीमित रहे।

एसईजेड व्यवस्था के निष्पक्ष क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि इस हेतु अपनायी जाने वाली चयन प्रक्रिया को और पारदर्शी बनाया जाय। एसईजेड एक्ट के अंतर्गत केवल न्यूनतम क्षेत्र तथा निर्यात संबंधी वचनबद्धता होती है जिसके आधार पर बोर्ड वचनबद्धता लाइसेंस प्रदान करता है। इस व्यवस्था में निर्णय स्तर पर भी ज्यादा प्रभावी दिशानिर्देश लागू होने चाहिये। एसईजेड स्थापना की प्रक्रिया में अपनाये जाने वाले कुछ नियमों को नवीनीकृत तथा व्यावहारिक बनाये जाने की आवश्यकता है- उदाहरणत: इस प्रक्रिया में भूमि अधिग्रहण अभी भी भूमि अधिग्रहण अधिनियम-1894 के आधार पर ही किया जा रहा है। ऐसे नियमों के स्थान पर कुछ अनुकूल व प्रभावी नियम आवश्यक है।

एसईजेड की परिकल्पना विकास के टापू के रूप में की गयी थी। परंतु अपनी विसंगतियों के कारण ये क्षेत्र रियल इस्टेट उद्यमियों के लाभ का केंद्र बनकर उभरे। यदि इन विसंगतियों को प्रभावी ढंग से दूर किया जाय तथा इस योजना का अंधानुकरण करने का बजाय इसे व्यावहारिक बनाया जाये, इस जनसामान्य के हितों से अधिकाधिक जोड़ा जाये, यह सुनिश्चित किया जाये कि इस योजना का लाभ उस वर्ग को अवश्य मिले जो इसकी कीमत अदा कर रहा है, तो विशेष आर्थिक क्षेत्र नि:संदेह विकास के वाहक बनने की क्षमता रखते हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार है)

पृष्ठ 5 का शेष

में यह तिकड़मी चाल सिर्फ भूमि का उपयोग बदलने की साजिश है। पूरी संभावना इस बात की है कि इसका उपयोग सटोरिय मुनाफाखोर भू-माफिया ही करेंगे। अगर आने वाले दिनों में इन खासुल खास इलाको में नागरिक सुविधाएं सड़कें बिजली पानी या स्कूल अस्पताल का इंतजाम करने में इनके मालिक या इनको विकसित करने वाले कोताही बरतते हैं तो उनका गला उपभोक्ता पकड़ने में असमर्थ ही रहेगी। बल्कि इन जगहों पर पैदा होने वाले प्रदूषण की गाज आसपड़ोस के इलाको पर गिरती रहेगी।

अक्सर यह कहा जाता है कि भारत को इस काम की प्रेरणा चीन से मिली है पर यह तुलना ज्यादा तर्क संगत नहीं। चीन ने ऐसे इलाकों का विकास आज के माहौल में नहीं आज से कोई पंद्रह साल पहले शुरू किया था। इस काम के लिए हजारों वर्ग किलोमीटर जमीन अलग रखी गई थी हिन्दुस्तान की तरह चंद हजार हेक्टेयर नहीं। इसके अलावा यह भी याद रखने लायक है कि चीन की सामाजिक व्यवस्था, संस्कार और वहां की राजनैतिक प्रणाली भारत से बहुत भिन्न है। यह बात सिर्फ साम्यवादी तानाशाही और उदार जनतंत्र तक सीमित नहीं।

कुल मिलाकर विशेष आर्थिक क्षेत्रों के बारे में कोई भी फैसला व्यापक सार्वजनिक संवाद के बाद ही लिया जाना चाहिए।

(लेखक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं)

विशेष आर्थिक क्षेत्र: निर्यात-वृद्धि के शॉर्ट-कट

वेद प्रकाश अरोड़ा

निर्यात बढ़ाने के विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने के लिए राज्यों के बीच और औद्योगिक घरानों के बीच एक होड़ सी लगी है। राज्य सरकारें और उद्योगपति दोनों इनकी स्थापना के लिए केंद्र में मंजूरी बोर्ड के दरवाजे पर रह-रहकर दस्तक दे रहे हैं। इन क्षेत्रों के लिए जमीन राज्य सरकारें देती है और मंजूरी केंद्र सरकार। इस विशेष आर्थिक-क्षेत्रों के शुरूआती वर्षों की उपलब्धियों पर नजर डालने पर हम पाते हैं कि वर्ष 2004-05 के दौरान इन क्षेत्रों से चार अरब साढ़े सात करोड़ डालर मूल्य का निर्यात हुआ, जो भारत के कुल निर्यात का पांच प्रतिशत से अधिक था। निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए वर्ष 2002-2007 की पंचवर्षीय निर्यात अवधि नीति में जिस व्यापक पैकेज की घोषणा की गई थी, उसी में विशेष आर्थिक क्षेत्रों और कृषि निर्यात क्षेत्रों को बनाने बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया था। आरंभ में पहले से मौजूद निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों को विशेष आर्थिक क्षेत्रों का रूप देकर विदेश व्यापार के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा गया। इनकी संख्या दहाई से कम थी। लेकिन अब रियायतों की बौछार कर नए नए इलाकों में प्रसंस्कृत कृषि उत्पादों से लेकर सूचना टेक्नोलॉजी जैसे क्षेत्रों, हाईटेक उपकरणों, और संयत्रों को बनाने-लगाने के विशेष आर्थिक क्षेत्रों में बाढ़ सी आ गई है। इनसे निर्यात की मात्रा, मूल्य और गति में जबरदस्त वृद्धि हो रही है। अभी लगभग 20 विशेष आर्थिक क्षेत्रों में तरह तरह की निर्यातपरक वस्तुएं तैयार हो रही हैं। पहले अधिक से अधिक 150 विशेष आर्थिक जोन बनाने की परिकल्पना की गई थी। अब यह सीमा हटा दी गई है। बल्कि गत 27 अक्टूबर तक इस संख्या से भी कहीं अधिक यानी 236 विशेष जोन बनाने की मंजूरी दी जा चुकी थी तथा 169 अन्य क्षेत्रों की स्थापना के आवेदनों पर सैद्धांतिक सहमति हो गई है। पूरी संभावना है कि अगले चार वर्षों में इन क्षेत्रों से निर्यात वर्तमान में दुगना होकर 25 अरब डालर मूल्य का हो जायेगा।

भारत में इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना की मुख्य प्रेरणा चीन में इन क्षेत्रों की आशातीत सफलता से मिली है। वहां प्रत्येक वर्ष 50 अरब डालर से अधिक का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश होता है। इधर भारत में मुश्किल से पांच अरब डालर का निवेश हो रहा है। वहां हायर और फायर के कड़े श्रम नियमों के बावजूद हर हाथ को रोजगार देकर, बढ़ती आबादी को अभिशाप से वरदान में बदल दिया गया है।

इधर भारतीय रिर्जव बैंक ने आशा प्रकट की है कि वर्ष 2005 के दौरान विशेष आर्थिक क्षेत्र कानून के अंतर्गत कामकाज के तरीके सरल बनाने से और टैक्सों में रियायत देने से लगभग 100,000 करोड़ रुपए का पूंजी निवेश होगा और पांच लाख लोगों को रोजगार मिल सकेगा। वाणिज्य मंत्रालय का भी अनुमान है कि अगले वर्ष तक ही इन क्षेत्रों में 25000 करोड़ का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश हो जायेगा और लगभग पांच लाख लोगों को रोजगार मिल जायेगा।

असल में इस कानून के बनने से छः वर्ष पहले एक अप्रैल 2000 को ही सरकार ने विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के बारे में अपनी नीति की घोषणा कर इनके लिए अनुकूल और स्पर्धात्मक वातावरण बनाने की पुख्ता नींव रख दी थी। बाद में इसके प्रावधानों को कानूनी रूप देने के लिए संसद ने जून 2005 में विशेष आर्थिक जोन विधेयक पारित कर दिया। इसमें विकासकर्ताओं, विनिर्माताओं तथा उद्योगों और औद्योगिक घरानों को आकर्षक वित्तीय प्रोत्साहन और कर-रियायतें दी गई। इसमें निर्यात की तेज वृद्धि के लिए सरकारी, निजी, और सांझा तीनों क्षेत्रों में ये जोन बनाए जाने का प्रावधान है। सहकारी संघवाद को प्रोत्साहन देने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों दोनों की विशेष आर्थिक जोने बनाने की अनुमति दी गई है। इन क्षेत्रों में जो भी देसी या विदेशी उद्योग खोला जायेगा, वह अपने उत्पादों का शत-प्रतिशत निर्यात करेगा। उद्योगों को निर्यात बढ़ाने के लिए हर संभव सहायता दी जायेगी। इन पर न तो कोई स्थानीय टैक्स, मंडी टैक्स, कारोबारी टैक्स, प्रवेश शुल्क, खरीद कर लगेगा और न निविष्ट वस्तुओं, पूंजीगत सामान, कच्चे माल तथा उपभोक्ता वस्तुओं पर कोई आयात शुल्क लगेगा। न उत्पाद शुल्क न आय कर और न सेवा कर लगेगा प्रत्येक इकाई का मूलमंत्र मुनाफा कमाना और अपने वित्तीय संसाधनों का निरंतर विकास करना होगा। आयातों पर मात्रा संबंधी अकुंशों और प्रतिबंधों को हटा दिया जायेगा। विशेष आर्थिक क्षेत्रों के निर्माण के पीछे यह मूल सोच काम कर रही है कि भारतीय उत्पादों को विदेशी बाजारों में सस्ता और स्तरीय बनाने में कोई कमी न रहने पाएं। प्रत्येक विशेष जोन का न्यूनतम क्षेत्र एक हजार हैक्टेयर होगा। इस का कम से कम 25 प्रतिशत इलाका औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित किया जायेगा। इसी में ही विभिन्न इकाइयां स्थापित की जाएगी। लेकिन न्यूनतम एक हजार हैक्टयर क्षेत्र रखने का नियम उत्पाद विशेष और हवाई अड्डा आधारित क्षेत्रों पर लागू नहीं होगा।

इधर विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना को एक नए और बहुआयामी विवाद को जन्म दिया है जो दिन-दिन तेज होता जा रहा है। इसका दायरा न सिर्फ वित्त मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय के बीच सीमित है, बल्कि यह किसानों और उद्योग मालिकों के बीच तथा राजनीतिक दलों

और स्वयं उद्योगपतियों के गलियारों तक फैल गया है। इतना ही नहीं छोटे उद्योगपतियों और यहां तक कि श्रमिकों का भी इन विशेष जोनों के प्रति कुछ कुछ मोहभंग होने लगा है। वित मंत्रालय और वाणिज्य मंत्रालय के बीच विवाद का मुख्य मुद्दा, इन जोनों को दी गई बेतहाशा रियायतों, इन से होने वाले राजस्व तथा शुल्क मुक्त क्षेत्रों और देश के बाकी विशाल आंतरिक शुल्क क्षेत्र (डोमस्टिक टैरिफ एरिया) के बीच खड़ी की गई आर्थिक विभाजन की दीवार है। एक में आर्थिक हरियाली लाना और दूसरे में बदहाली लाना, बरसों से जमे जमाएं उद्योगों से बेरुखी वाला सौतेला व्यवहार और नए उग रहे उद्योगों को गले लगाने का यह भेदभाव, अर्थतंत्र के लिए एक खतरनाक खेल है। वित्त मंत्री चिदम्बरम का तो यहां तक कहना है कि कृत्रिम दीवार खड़ी करने और दुनिया भर की रियायतों और सुविधाएं देने से 70,000 करोड़ से 1,20,000 करोड़ रुपए के राजस्व की हानि होगी। आर्थिक तंगी की वर्तमान स्थिति में मेगा योजनाओं के लिए विशाल धन कैसे जुट पायेगा। पहले ही भारत पर विदेशी ऋण एक वर्ष में 2 अरब डालर बढ़ गया है। यह वर्ष 2005 के 123 अरब 20 करोड़ डालर से बढ़कर 31 मार्च 2006 को 125 अरब करोड़ डालर हो चुका है। इस कर्ज के भुगतान की राशि अगले पांच वर्षों में दुगनी हो जायेगी। परिणाम यह होगा कि राजकोषीय घाटे और राजस्व घाटे का मामले में राजकोषीय जिम्मेदारी और बजट प्रबंधन का पालन तो दूर उन की घोर अवहेलना होगी। जबकि ये दोनों दीर्घकालिक आर्थिक और बजट संपोषण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक ही देश में दो समानांतर उद्योग तंत्रों की स्थापना से एक अजीब, असंतुलित और भ्रामक स्थिति उत्पन्न होना अहितकर होगा। लेकिन वाणिज्य मंत्री कमलनाथ ने विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना से होने वाले नुकसान को कोरी कल्पना की संज्ञा देते हुए एक दूसरी तथा गुलाबी तस्वीर प्रस्तुत की है। उनके अनुसार इन जोनों की व्यापारिक एवं आर्थिक गतिविधियों से अगले दस वर्षों में 44000-45000 करोड़ रुपए की विशुद्ध आय होगी। सरकार, औद्योगिक इकाइयों को निर्यात वृद्धि के लिए वैसे भी तो रियायतें देती है और देती रहेगी, लेकिन अगर इन जोनों के उद्योगों को कुछ अधिक रियायतें देकर डालर कमाने या राजकोष बढ़ाने का सुअवसर पैदा किया जा रहा है, तो आपत्ति क्यों? विशेष आर्थिक जोनों की स्थापना को लेकर एक आपत्ति यह व्यक्त की गई कि एक तरफ तो रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड की सहायक कंपनी रिलायंस वैंचर्स लिमिटेड हरियाणा राज्य के औद्योगिक विकास निगम के साथ 25 हजार एकड़ भूखंड में विशाल संयुक्त आर्थिक क्षेत्र बनाने जा रही है तो दूसरी तरफ ऐसे मिनी विशेष क्षेत्र बनाने की बात की जा रही है, जो स्कूलों और कालेजों के क्षेत्रों से भी कम होंगे। यह जमीन आसमान का अंतर क्यों, विशेषकर तब जबकि प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र के लिए न्यूनतम क्षेत्र एक हजार हैक्टेयर निर्धारित किया गया है। कुछ आलोचक विशाल विशेष आर्थिक जोनों के खिलाफ हैं और चाहते हैं कि इनकी अधिकतम सीमा भी निर्धारित कर दी जाए।

इन जोनों का निर्माण का जबरदस्त विरोध वे किसान और अन्य लोग कर रहे हैं, जिन्हें मामूली मुआवजा देकर उन्हें घर से बेघर किया जा रहा है। कुछ आलोचकों ने तो इन जोनों को उन फरमानों का 21वीं शताब्दी का अवतार तक कह डाला है जो उन राजा-महाराजाओं ने ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए जारी किए थे। विवाद की जड़ में यह मुद्दा है कि क्या ये क्षेत्र विश्व श्रेणी के निर्यात क्षेत्र का रूप लेने के सशक्त इंजन या कारगर साधन बनेंगे या बड़े उद्योगपतियों की तिजोरियों को भरने उनके विदेश व्यापार को चार चांद लगाने के लिए गरीब किसानों की जमीन हड़पने का जोरदार बहाना बन जायेगें। जरूरी है कि मुश्किल से दो जून रोटी जुटाने वाले किसानों की एकाध एकड़ जमीन भी हाथ से निकल जाने पर आत्महत्याओं का नया सिलसिला रोकने के उपाय किए जाएं तथा बाजार भाव के अनुसार उन्हें समुचित मुआवजा देकर भरोसेमंद पुनर्वास नीति तैयार की जाए वरना कई मेधा पाटेकरों की फौज तैयार की जायेगी या दादरी जैसे नए किसान आंदोलन शुरू हो जायेंगे। लेकिन वाणिज्य मंत्री श्री कमलनाथ का कहना है कि ये जोन मुख्य रूप से बंजर और बेकार पड़ी जमीन पर ही बनाये जायेंगे। वैसे भी जिन पहले 150 जोनों की मंजूरी दी गई है उनकी सारी जमीन या तो राज्य औद्योगिक विकास निगमों की है या फिर कंपनियों की। वहां से एक भी किसान विस्थापित नहीं हुआ है।

एक अन्य खतरा यह हो सकता है कि इन विशेष आर्थिक जोनों की स्थापना से खेती योग्य भूमि घट जायेगी। 'जोन-बनाओ, किसान-भगाओ' का खतरनाक कार्यक्रम आगे बढ़ते जाने से बुआई क्षेत्र निश्चित रूप से घट जायेगा। कृषि भूमि में उत्पादकता के एक प्रतिशत अथवा 1.5 प्रतिशत पर ठहराव की स्थिति में अगर कहीं इंद्रदेवता की भृकुटी तन गई तो सूखे या अकाल का संकट पैदा हो सकता है। अब निर्धारित मार्ग निर्देशक सिद्धांतों में कहा किया है कि वह वर्ष में दो फसल देने वाली कृषि भूमि इन जोनों में शामिल नहीं की जायेगी। इस संदर्भ में पर्यावरण के दो पहलू की अनदेखी करना भी खतरे को निमंत्रण देना होगा। पिछले 50 वर्षों में वनस्पति और हरियाली क्षेत्र, जिसे हरित पट्टी या हरी चादर भी कहा जाता है, 15 प्रतिशत से घटकर 6.5 प्रतिशत रह गया है। इस हरित क्षेत्र में बुलडोज़र चलाकर विशेष आर्थिक क्षेत्रों में उद्योगनगरियां बनाने-बसाने अनाजों, सब्जियों और हर रोज खाने-पीने की अन्य उपभोक्ता चीजों की कीमतें दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जायेगीं। पहले ही स्थिति इतनी खराब हो चुकी है कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत राशन की दुकानों पर अनाज की उपलब्धता पांच प्रतिशत से घटाकर तीन प्रतिशत कर दी गई है। इन जोनों के विस्तार से कृषि क्षेत्र सिमटने से मंहगाई सातवें आसमान को छूने लगेगी।

एक बात और इन विशेष आर्थिक जोनों के 25 प्रतिशत हिस्से में औद्योगिक इकाइयों बनाई जायेगी। बाकी 75 प्रतिशत इलाके का प्रयोग आवासों, शिक्षा संस्थाओं और वाणिज्य परिसरों आदि के लिए किया जा सकता है। कड़े निषेधकारी कानून के बावजूद इस 75

प्रतिशत क्षेत्र में जमीनों, प्लाटों, मकानों की खरीद और बिक्री को बढ़ावा मिलेगा। यह सारा गैर-कानूनी काम दुकानों और मकानों को पट्टे पर देने की अनुमति की आड़ में किया जायेगा। यहां भू-माफिया चोरी छिपे अपना खेल खेलते हुए काफी भूमि और मकान हड़पने में देर नहीं करेगें। अभी तक हाशिए पर रह रहे गरीब किसान रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों की तरफ पलायन करते रहे हैं, लेकिन उन विशेष आर्थिक क्षेत्रों की फसल बढ़ने जाने पर छोटे बड़े शहरों से उद्योगों का पलायन ग्रामीण इलाकों में इन जोनों की तरफ होने से उलटी गंगा बह निकलेगी। इस का दुष्प्रभाव इन शहरों को झेलना पड़ेगा। उद्योगों के पलायन से वहां व्यापार की गतिविधियां कम हो जायेगीं और बेरोज़गारी अधिक बढ़ने लगेगी। शहरों के छोटे उद्योगों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए मजूबर होना पड़ेगा। जहां तक इन विशेष आर्थिक जोन के कारखानों में काम करने वाले मजदूरों का संबंध है, उनके अधिकारों और कर्तव्यों के संबंध में स्थिति स्पष्ट नहीं है। आधिकाधिक सूचना के अनुसार औद्योगिक विवाद के तहत यहां की सभी इकाइयों को लोकोपयोगी सेवा घोषित कर दिया जायेगा। औद्योगिक विवाद कानून और अन्य जुड़े कानूनों के अंतर्गत सभी अधिकतर विकास आयुक्त को सौंपे जायेगें। लेकिन लोकोपयोगी सेवा घोषित होने पर औद्योगिक इकाइयों में श्रमिकों की हड़तालों के प्रति नरम रुख नहीं अपनाया जायेगा। इससे स्थिति कभी भी बिगड़ सकती है। इसलिए इन जोनों में श्रम-कानूनों को समाप्त करने पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। यह बात तय है कि जिस प्रकार उद्योगपतियों पर विभिन्न राज्य सरकारें जितनी मेहरबान बनी हुई है, उतनी या कुछ कम मेहरबानी या उदारता इन श्रमिकों के प्रति दिखानी होगी, वरना हड़तालों के प्रति नरम रुख नहीं अपनाया जायेगा। इससे स्थिति कभी भी बिगड़ सकती है। इसलिए इन जोनों में श्रम-कानूनों को समाप्त करने पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। यह बात तय है कि जिस प्रकार उद्योगपतियों पर विभिन्न राज्य सरकारें जितनी मेहरबान बनी हुई है, उतनी या कुछ कम मेहरबानी या उदारता इन श्रमिकों के प्रति दिखानी होगी, वरना हड़तालों से सब टांय टांय फिस हो जायेगा।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार है)

एसईजेड पर फिर सधने लगे निशाने

वित्त मंत्रालय को चार साल में 1000 अरब के राजस्व नुकसान की आशंका

देश में धड़ल्ले से खुल रहे विशेष आर्थिक जोन (एसईजेड) को लेकर चल रहा विवाद फिलहाल थमने का नाम नहीं ले रहा है। कमलनाथ के एसईजेड अभियान पर वित्त मंत्रालय ने फिर से निशाना साधा है। यही नहीं, योजना आयोग भी काफी आक्रामक मुद्रा में आ गया है।

वित्त मंत्रालय ने एसईजेड स्कीम के जरिए राजस्व के भारी नुकसान पर फिर से चिंता व्यक्त की है। पिछले कई माह से वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ही राजस्व नुकसान के लिहाज से इस स्कीम की कड़ी आलोचना करते रहे हैं। लोकसभा में वित्त राज्यमंत्री एस.एस. पलनीमणिक्कम ने एक सवाल के जवाब में इस मामले को फिर से तूल दे दिया। उन्होंने कहा कि अगली चार वर्षों में विशेष आर्थिक जोन (एसईजेड) से उसे 1000 अरब रुपये में भी अधिक का राजस्व नुकसान उठाना पड़ेगा। देश में बड़े पैमाने पर एसईजेड खुलते जा रहे हैं। इससे अगले चार वर्षों में 1,02,621 करोड़ रुपये के राजस्व नुकसान का अनुमान है। उन्होंने बताया कि वर्ष 2006-07 से लेकर वर्ष 2009-10 तक की अवधि में एसईजेड की यूनिट की दी जाने वाली कर रियायतों के चलते 53740 करोड़ रुपये के प्रत्यक्ष करों (आयकर और कॉरपोरेट कर) और 48881 करोड़ रुपये के अप्रत्यक्ष करों (उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क) का नुकसान झेलना पड़ेगा। हालांकि, उन्होंने यह भी कहा कि इस कमी को दूर करने के लिए सरकार नियमों के मुताबिक कर वसूली पे सुधार लाने के प्रयास जारी रखेगी।

दूसरी ओर योजना आयोग भी स्कीम की क्लीन चिट नहीं दे रहा है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के लिए प्रस्तावित मसौदे में आयोग ने कहा है कि वैसे तो एसईजेड स्कीम के तहत निजी निवेश काफी मात्रा में आ रहा है, लेकिन इस स्कीम को लेकर कई प्रकार के सवाल खड़े किए जा रहे हैं जिन पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। ऐसे उपाय किए जाने चाहिए कि एसईजेड गतिविधि सिर्फ रीयल एस्टेट गतिविधि ही बनकर न रह जाए। वहीं, इस स्कीम के जरिए कर रियायतों से भारी राजस्व नुकसान को लेकर भी आशंका व्यक्त की जा रही है। इसके साथ ही एसईजेड की यूनिट और बाहर स्थित औद्योगिक यूनिटों के बीच भेदभाव पैदा होने का भी आरोप है। इन समस्याओं के निराकरण के लिए अपेक्षित व्यवस्था करना जरूरी है।

विशेष आर्थिक क्षेत्रः विकास या भूमि हड़प

रमेश कुमार दुबे

आर्थिक क्रियाकलाप तथा रोजगार का और अधिक संवर्द्धन करने के लिए निर्यात एक महत्वपूर्ण साधन है। इस साधन को प्रभावी बनाने के लिए निर्यात संबंधी योजनाओं में समय-समय पर संशोधन होते रहते हैं और कुछ नई योजनाएं भी प्रारंभ की जाती है। भारत निर्यातों का संवर्द्धन करने में निर्यात प्रंसस्करण क्षेत्र (एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन-ईपीजेड) माडल को मान्यता देने वाले एशिया के पहली पंक्ति के देशों में से एक है। एशिया का पहला ईपीजेड 1965 में कांधला में स्थापित किया गया था। निर्यातों में तेजी से वृद्धि प्राप्त करने हेतु वृद्धि प्राप्त करने हेतु वातावरण तैयार करने की दृष्टि से निर्यात एवं आयात (एक्जिम) नीति-2000 में एक विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) नीति की घोषणा की गई थी।

विशेष आर्थिक क्षेत्र सामान्य रूप से निवेशकों को आकर्षित करने के लिए उदार आर्थिक नीतियों एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की बेहतरीन आधारभूत सुविधाओं से संपन्न एक विशिष्ट रूप से निर्धारण औद्योगिक क्षेत्र है। एसईजेड सामान्यतः निर्यातोन्मुख होते हैं और उनमें ऐसे उद्यम होते हैं जिनमें देश के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित करने की क्षमता होती है। इसमें उद्योग जगत के लिए भूमि के साथ-साथ आवासीय, शैक्षणिक, कार्यालयीय, दूरसंचार व मनोरंजन सुविधाएं भी उपलब्ध होगी। इनकी अवस्थिति सामान्यतः हवाई अड्डे एवं बंदरगाह के समीप होती है ताकि आयात-निर्यात में सरलता रहे। प्रत्येक एसईजेड का न्यूनतम क्षेत्रफल 1000 हेक्टेयर होगा, लेकिन न्यूनतम 1000 हेक्टेयर क्षेत्र रखने का नियम उत्पाद विशेष और हवाई अड्डा आधारित विशेष क्षेत्रों पर लागू नहीं होगा। इसका कम से कम 25 प्रतिशत भाग औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित किया जाएगा। इस क्षेत्रों में जो भी औद्योगिक इकाइयां लगेगी वे अपने उत्पाद का शत-प्रतिशत निर्यात करेगी। इकाइयों को निर्यात बढ़ाने के लिए हर संभव सहायता दी जाएगी। इन इकाइयों पर कोई स्थानीय कर, मंडी कर, कारोबारी कर, प्रवेश शुल्क नहीं लगेगा और न ही पूंजीगत सामान, कच्चे माल और उपभोक्ता वस्तुओं पर कोई आयात शुल्क लगेगा। इन इकाइयों को उत्पाद शुल्क, आयकर सेवाकर, और आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंधों से भी छूट प्राप्त होगी। प्रत्येक इकाई का मूल यंत्र कमाना और अपने संसाधनों का निरंतर विकास करना होगा।

भारत में एसईजेड की स्थापना की प्रेरणा चीन से मिली। चीन में ऐसे क्षेत्रों को अत्यधिक सफलता मिली है। इसी के अनुसरण में अप्रैल, 2000 में एक विशिष्ट नीति की घोषणा की गई। नीति के तहत सार्वजनिक, निजी और संयुक्त क्षेत्र में एसईजेड स्थापित करने का प्रावधान किया गया। इसके साथ ही वर्तमान "निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों (ईपीजेड)" को एसईजेड में बदलने की छूट दी गई। इसी के अनुसरण में सरकार ने आठ ईपीजेड क्षेत्रों (कांधला, सूरत, कोचीन, सांताक्रूज, फाल्टा, मद्रास, विशाखापट्नम और नोएडा) को एसईजेड में परिवर्तित किया। अप्रैल, 2000 की नीति के प्रावधानों को वैधानिक रूप देने के लिए जून, 2005 में संसद ने विशेष आर्थिक क्षेत्र विधेयक पारित किया। फरवरी, 2006 में वाणिज्य मंत्रालय ने इसके लिए नियमों की अधिसूचना जारी कर दी। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ प्रक्रियाओं के अत्यधिक सरलीकरण और केंद्र व राज्य सरकारों से संबंधित मामलों के लिए एकल खिड़की निकासी का प्रावधान है। यह अधिनियम बहुउत्पाद एसईजेड एवं क्षेत्र विशिष्ट एसईजेड दोनों की अनुमति देता है। एसईजेड को दी गई छूटों के कारण नए-नए क्षेत्रों में विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना की जा रही है और सितंबर, 2006 तक सरकार ने कुल मिलाकर 267 एसईजेड को स्वीकृति दे दी। इससे निर्यात की मात्रा, मूल्य और गति में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। इसे पिछले तीन वर्षों के दौरान एसईजेड से हुए निर्यात से समझा जा सकता है।

एसईजेड से निर्यात

वर्ष	निर्यात (करोड़ रुपये में)
2003-04	13,854
2004-05	18,309
2005-06	22,510

स्रोत-वाणिज्य विभाग की वार्षिक रिपोर्ट-2005-06

दिसंबर 2005 में कार्यरत एसईजेडों में 948 इकाइयां प्रचलनरत हैं जिनमें लगभग 1.10 लाख व्यक्तियों (इनमें से लगभग 40 प्रतिशत महिलाएं हैं) को प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त हुआ है। एसईजेडों में इकाइयां स्थापित करने के लिए उद्यमियों द्वारा किया गया निजी निवेश लगभग 2000 करोड़ रुपये है। भारतीय रिजर्व बैंक का अनुमान है कि सरलीकृत प्रक्रिया और कर राहत से एसईजेड में एक लाख करोड़ का पूंजी निवेश होगा और पांच लाख लोगों को रोजगार मिल सकेगा। वाणिज्य मंत्रालय का भी अनुमान है कि अगले वर्ष तक इन क्षेत्रों में 22 हजार करोड़ रुपये का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हो जाएगा।

एसईजेड के उपर्युक्त सकारात्मक पक्षों के साथ-साथ कई नकारात्मक पक्ष भी है जो इसके विरोध को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्रों को मिलने वाले आधारभूत सुविधाओं और कर लाभों के कारण औद्योगिक गतिविधियों व संसाधनों का संकेंद्रण इन क्षेत्रों में बढ़ेगा। इससे असमानता बढ़ेगी। वित्त मंत्रालय को डर है कि एसईजेड को दी जाने वाली कर रियायतों और सुविधाओं से राजस्व की बड़े पैमाने पर क्षति होगी। एक आशंका यह भी है कि वर्तमान में जो व्यवसायी अपने व्यवसाय के अनुसार कर चुकाते रहे हैं वे कर चुकाने से बचने के लिए एसईजेड की शरण ले लेगें। एसईजेड में बेहतर आधारभूत ढांचा, न्यूनतम व्यावसायिक लागत और कर राहत की सुविधाए प्राप्त होती है लेकिन इससे लाभ की उम्मीद कम ही की जाती है। बड़ी कंपनियां इससे लाभान्वित होगी परंतु जनसामान्य इससे कितना लाभान्वित होगा यह विचारणीय है। वैश्वीकरण के इस युग में सभी को व्यवसाय के समान अवसर देने के तर्क दिए जा रहे हैं, विश्व स्तर पर अत्यंत प्रतिस्पर्धा का वातावरण है, ऐसे में कुछ विशेष क्षेत्रों को रियायत देने से साधन विहीन क्षेत्र और भी पिछड जाएंगे।

पीएचडी वाणिज्य और उद्योग मंडल के अध्ययन के अनुसार भारत के 44 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रफल का प्रतिनिधित्व करने वाले 10 उत्तरी राज्य औद्योगिक उत्पादन में मात्र 30 प्रतिशत और कुल-निर्यात में 40 प्रतिशत योगदान कर पाते हैं। ये राज्य महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक सूचकों के मामले में पश्चिमी और दक्षिणी राज्यों से काफी पीछे हैं। एसईजेड की स्थापना तो मुम्बई, दिल्ली, हैदराबाद, बंगलोर जैसे बड़े महानगरों के समीप हो रही है। इससे अंतरक्षेत्रीय और अंत:क्षेत्रीय असमानता में अत्यधिक वृद्धि होगी। भारतीय रिजर्व बैंक ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि एसईजेड की स्थापना से देश की अर्थव्यवस्था में असंतुलन पैदा होगा क्योंकि जो पूंजी पिछड़े क्षेत्रों के विकास में लगती थी अब उसका निवेश विशेष आर्थिक क्षेत्र में होगा जो पहले से ही विकसित क्षेत्रों में है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के वरिष्ठ अर्थशास्त्री रघुराम राजन एसईजेड योजना में करों की दीर्घकालिक छूट को बहुत अच्छा प्रोत्साहन नहीं मानते। उनके अनुसार इस तरह की योजना लागू होने पर सामान्य पारिस्थितियों में मिलने वाले निवेश से थोड़ा अधिक निवेश मिल जाएगा लेकिन राजस्व का अधिक नुकसान होगा और उसका लाभ संबंधित अधिकारियों को प्राप्त होगा। कई अर्थशास्त्री मानते है कि ये क्षेत्र विश्व श्रेणी के निर्यात क्षेत्र का रूप

खाद्यान्न क्षेत्रफल में गिरावट

वर्ष	खाद्यान्नों के अधीन क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर में)
1983-84	131.16
1990-91	127.84
1994-95	123.66
1999-2000	123.11
2004-05	120.16

स्रोत-कृषि एवं सहकारिता विभाग की वार्षिक रिपोर्ट

गेहूं का उत्पादन

वर्ष	गेहूं का उत्पादन (मिलियन टन में)
1999-2000	76.3
2000-01	69.6
2001-02	72.7
2002-03	65.8
2003-04	72.1
2004-05	68.6
2005-05 (अग्रिम अनुमान)	69.5

स्रोत-कृषि एवं सहकारिता विभाग के आंकड़े

लेने के प्रभावी साधन बनने के स्थान पर कुछेक उद्योगपतियों के विदेशी व्यापार को बढ़ाने का साधन बन जाये।

एसईजेड की स्थापना से छोटे व सीमांत किसानों को बड़े पैमाने पर भूमि पर बेदखल किया जा सकता। इससे पहले से ही सांसत में जीने वाले किसानों के लिए आत्महत्या की मुक्ति का मार्ग बचेगा। बड़े पैमाने पर एसईजेड की स्थापना से कृषि योग्य भूमि में कमी आ जाएगी और देश में खाद्यान्न संकट गंभीर रूप धारण कर लेगा। बढ़ती जनसंख्या, उदारीकरण, आवासीय-व्यावसायिक गतिविधियों आदि के कारण देश में खाद्यान्न क्षेत्रफल में पहले से ही गिरावट आ रही है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है-

खाद्यान्न क्षेत्रफल में गिरावट का कुप्रभाव खाद्यान्न उत्पादन और प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता पर भी बड़ रहा है। उदाहरण के लिए दिल्ली से सटे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का गेहूं उत्पादक क्षेत्रफल के गैर कृषि कार्यों में उपयोग से गेहूं उत्पादन में गिरावट आ गई है।

उत्तर भारत में एसईजेड का जो क्षेत्र प्रस्तावित है वह हरित क्रांति विशेषकर गेहूं उत्पादन का क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश) है। इससे आने वाले समय में गेहूं संकट और गहराएगा। परिवर्तित निर्देशक सिद्धांतों में कहा गया है कि वर्ष में दो फसल देने वाली कृषि भूमि का एसईजेड के लिए अधिग्रहण नहीं किया जाएगा। इस संदर्भ में पर्यावरण की उपेक्षा भी घातक सिद्ध होगी। स्वतंत्रता के बाद से ही हरित पट्टी (वनस्पति और हरियाली क्षेत्र) में निरंतर कमी आ रही है और हरित क्षेत्र का क्षेत्रफल 15 प्रतिशत से घटकर 6.5 प्रतिशत रह गया है। एसईजेड की स्थापना से हरित क्षेत्र में और कमी आएगी।

एसईजेड के 25 प्रतिशत भाग में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की जाएगी जबकि शेष 75 प्रतिशत भाग गैर-औद्योगिक गतिविधियों (आवास, कार्यालय, शिक्षा संस्थान आदि) में प्रयुक्त होगा। इन गैर-औद्योगिक गतिविधियों के लिए कोई स्पष्ट मानक तय नहीं किया गया है। इससे एसईजेड क्षेत्र में भूमि, प्लाट और भवन को किराए व पट्टे पर देने के नाम पर अवैध खरीद-बिक्री और रीयल एस्टेट एजेंटों को बढ़ावा मिलेगा। जिस तीव्र गति से कंपनियां एसईजेड परियोजनाओं में रुचि दिखा रही हैं उससे यही लगता है कि एसईजेड निर्यात वृद्धि व

रोजगार सृजित करने के साथ पर अधिक से अधिक जमीन हथियाने का हथकंडा मात्र है।

एसईजेड के निर्माण का विरोध वे किसान कर रहे हैं जिन्हें साधारण मुआवजा देकर भूमि से बेदखल किया जा रहा है। विवाद एसईजेड के लिए भूमि अधिग्रहण में पारदर्शिता के अभाव और भूस्वामियों को मुआवजे की नीति की अस्पष्टता को लेकर भी है। कई अध्ययनों से सिद्ध होता है कि भारत में जिन किसानों और आदिवासियों की भूमि ली गई है, उन्हें पुनर्वासित करने का रिकार्ड बहुत अच्छा नहीं है। एसईजेड के लिए भूमि का अधिग्रहण 1894 के कानून के जरिए हो रहा है। इससे भी संदेह को बल मिलता है। महानगरों के आस-पास कृषि योग्य भूमि पर एसईजेड के निर्माण से लाखों किसानों के समक्ष जीविका का संकट उत्पन्न हो जाएगा और दूध, सब्जि आदि की आपूर्ति प्रभावित होगी। इसी मुद्दे पर ग्रामीण विकास मंत्री रघुवंश प्रसाद सिंह कहते हैं, "एसईजेड देश के पिछड़े और बंजर क्षेत्रों में क्यों नहीं बनाए जा रहे हैं। शहरों के पास टाउनशिप बसाने के लिए छूट देने की क्या जरूरत है?

समग्रत: एसईजेड नीति को विवाद रहित बनाने के लिए इससे जुड़ी आशंकाओं का निवारण आवश्यक है। एसईजेड की संख्या सीमित करके गैर-औद्योगिक कार्यकलापों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए, भूमि अधिग्रहण संबंधी नीतियों में पारदर्शिता हो और किसानों से भूमि अधिग्रहण के लिए व्यापक पैकेज तैयार किया जाए।

विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम, 2006 की मुख्य विशेषताएं

- विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेडों) और उनमें अवस्थित इकाइयों के विकास, परिचालन और रखरखाव के लिए वस्तुओं के आयात/घरेलू खरीद पर सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क आदि से छूट;
- एसईजेड इकाइयों के लिए 5 वर्षों के लिए 100 प्रतिशत आयकर छूट, अगले 5 वर्षों के लिए पुन:प्रयुक्त निर्यात लाभों के लिए 50 प्रतिशत तक आयकर छूट;
- किसी उपक्रम को शहरी क्षेत्र एसईजेड में स्थानांतरित करने पर पूंजीगत अभिलाभ से छूट;
- एसईजेड विकासकर्ताओं को 15 वर्षों की अवधि के लिए 100 प्रतिशत आयकर छूट;
- एसईजेड विकासकर्ताओं को लाभांश वितरण कर से छूट;
- एसईजेडों में स्थित अपतटीय बैंकिग इकाइयों को 5 वर्ष के लिए 100 प्रतिशत और अगले 5 वर्ष के लिए 50 प्रतिशत आयकर छूट;
- एसईजेड में उन प्रोत्साहनों और सुविधाओं के साथ अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सेवा केंद्र स्थापित करने के लिए एक प्रावधान का प्रस्ताव किया गया है जो अपतटीय बैंकिग इकाइयों को उपलब्ध हैं;
- एसईजेड विकासकर्ता और इकाइयों को न्यूनतम वैकल्पिक कर से छूट;
- एसईजेड विकासकर्ता और इकाइयों को वस्तुओं के अंतर-राज्यीय क्रय पर सीएसटी की छूट;
- इन जोनों को और अधिक प्रशासनिक, वित्तीय और कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करने के उद्देश्य से प्रत्येक एसईजेड के लिए एक प्राधिकरण का गठन। तथापि, किसी व्यक्ति या राज्य सरकार द्वारा किसी एसईजेड के लिए ऐसे किसी प्राधिकरण की परिकल्पना नहीं की गई है;
- एसईजेडों में हुए अपराधों पर त्वरित विचारण और जांच सुनिश्चित करने के लिए विनिर्दिष्ट न्यायालयों और एक एकल प्रवर्तन एजेंसी की स्थापना;
- एकल-खिड़की निकासी को सुकर बनाने के लिए राज्य सरकारों को राज्य कानूनों को उदार बनाने और एसईजेडों के विकास आयुक्तों को अपनी शक्तियां प्रत्यायोचित करने के लिए प्रोत्साहित करना।

विशेष आर्थिक क्षेत्र नियमों के उपबंध

- विशेष आर्थिक क्षेत्रों के विकास, परिचालन और रखरखाव तथा एसईजेड स्थापित करने और इनमें व्यवसाय करने के लिए प्रक्रिया का सरलीकरण करना। इसमें स्व-प्रमाणन पर जोर देने के साथ सरलीकृत अनुपालन प्रक्रियाएं और प्रलेखन शामिल हैं;
- एसईजेड स्थापित करने, एसईजेडों में कोई इकाई स्थापित करने और केंद्र तथा राज्य सरकारों से संबंधित मामलों के संबंध में स्वीकृति के लिए एकल खिड़की स्वीकृति;
- बैंक गारंटी प्रदान करने की कोई आवश्यकता नहीं;
- प्रारंभ अनुमोदन की अवस्था में उप-संविदा करने की अनुमति प्राप्त करने के विकल्प के साथ विदेशी सत्ताओं के लिए संविदा पर विनिर्माण करना, और

विशेष आर्थिक क्षेत्रों की विभिन्न श्रेणियों के लिए निर्धारित न्यूनतम क्षेत्र संबंधी अपेक्षाएं

- बहु-उत्पाद एसईजेडों का क्षेत्र 1000 हेक्टेयर या इससे अधिक होगा।
- सेवा क्षेत्र एसईजेडों का क्षेत्र 100 हेक्टयेर या इससे अधिक होगा।
- रत्न एवं आभूषण, सूचना प्रौद्योगिकी, जैव-प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों जहां भारत को प्रतिस्पर्धी लाभ प्राप्त है, को सहायता प्रदान करने के लिए इन क्षेत्रों में 10 हेक्टेयर या इससे अधिक क्षेत्र में क्षेत्र-विशिष्ट एसईजेड स्थापित किए जा सकते हैं।
- अन्य सभी क्षेत्रों के लिए क्षेत्र कम से कम 100 हेक्टेयर होना चाहिए।
- कुछेक राज्यों (असम, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, सिक्किम, जम्मू एवं कश्मीर गोवा) में सटी हुई भूमि के बड़े खंड को ढूंढने में आने वाली कठिनाई को ध्यान में रखते हुए ऐसे राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में बहुउत्पाद एसईजेडों के लिए क्षेत्र संबंधी शर्तों में ढील देकर 200 हेक्टेयर और क्षेत्र-विनिर्दिष्ट एसईजेडों के लिए 50 हेक्टेयर कर दिया गया है।

(लेखक खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग से सम्बद्ध हैं)

भारत में सजी सेज की बगिया

पूनम द्विवेदी

भारत आज विश्व की सबसे तेज आर्थिक विकास दर वाली अर्थव्यस्थाओं मे से एक है। उदारीकरण और निजीकरण और निजीकरण के पश्चात अर्थव्यवस्था में जोरदार उछाल आया है। चूंकि उदारीकरण के पश्चात सरकार ने उद्योगपतियों के लिए नियम-कानूनों को और सरल बना दिया और निजीकरण के माध्यम से पूँजी की समस्या दूर की। निजीकरण आजतक अमेरिका या जापान जैसी विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं का एक विशेष सहयोगी बिंदु रहा है। निजीकरण को लेकर हमारे समक्ष कभी विभिन्न भ्रान्तियां भी फैला दी जाती हैं जबकि निजीकरण से पूंजी की समस्या का खात्मा, अधिक लाभ रोजगार में बढ़ोत्तरी, प्रतिस्पर्धात्मक माहौल और न जाने कितने फायदे हैं और जहां तक रही बात निजीकरण द्वारा शोषण की तो सरकार ऐसे नियम और कायदे द्वारा निजी क्षेत्र को शिकंजे में रखती है जिससे देश के गरीब से गरीब व्यक्ति का भी किसी प्रकार से शोषण न होने पाए। चूंकि किसी भी समाज या देश की दशा तभी सुधारी जा सकती है जबकि उस देश का आर्थिक विकास हो और हर व्यक्ति में आर्थिक सक्षमता। चौदह हज़ार के आकड़े को पार कर गया शेयर बाजार (सेंसेक्स), विदेशी निवेश में बढ़ोत्तरी और व्यक्तियों की आय का बढ़ना यह दर्शाता है कि देश तरक्की पर है और विश्व में एक शक्ति के रूप में स्थापित हो रहा है। उदारीकरण के पश्चात सरकार ने विदेशी निवेश को आकर्षित किया और व्यापार में बढ़ोत्तरी करने का भी प्रयास किया। सरकार ने विश्व के व्यापार में भारत का हिस्सा बढ़ाने के लिए निर्यात संवर्द्धन की ओर ध्यान दिया। इसके लिए निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र की स्थापना की गयी। एशिया का पहला निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ई.पी.जेड) गुजरात के कांडला में 1965 में स्थापित किया गया। कांडला का प्रारंभ में अच्छा परिणाम देखकर देश के अन्य स्थानों पर सात और ईपीजेड स्थापित किए गए। लेकिन कानून की जटिल प्रक्रियाओं, उदारीकरण का वह स्तर न होना जिसकी आवश्यकता थी, आधारभूत ढ़ाचे के लिए पूंजी की कमी जिससे कि आधारभूत ढाचां कमजोर रह जाना, संसाधनों का अभाव, विश्व व्यापार के नियमों का अलग-थलग होना और भी अनेकानेक कारणों से इपीजेंड एक अच्छे निर्यात संवर्द्धन कार्यक्रम के माध्यम के रूप में उभरने में सफल नहीं हो पाए।

सरकार ने निर्यात बढ़ाने के लिए एक ठोस कार्ययोजना बनायी तथा विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) की स्थापना की। इपी जेड की कमियों से सबक सीखते हुए सरकार ने सन् 2000 में विशेष आर्थिक क्षेत्र की रणनीति बनायी। विशेष आर्थिक क्षेत्र ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर कंपनियों को शुल्क मुक्त क्षेत्र देकर निर्यात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन क्षेत्रों के लिए जमीन उपलब्ध कराने का काम राज्य सरकारों के जिम्में है तो वहीं केन्द्र सरकार अंतिम मंजूरी देती है। इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों ने अच्छा कार्य निष्पादन किया है निर्यात का लक्ष्य लेकर चले इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों से 2004-2005 के मध्य चार अरब साढ़े सात करोड़ डालर का निर्यात हुआ जो भारत से हुए कुल निर्यात का पांच प्रतिशत है। इतने बड़े स्तर की सफलता इतना जल्द देखते हुए सरकार उत्साहित हुई। सन् 2002 की पांच साल की आयात-निर्यात नीति में बहुत बड़ी-बड़ी छूटों की घोषणा सरकार ने इन निर्यात क्षेत्रों के लिए की। सरकार अब विशेष निर्यात क्षेत्र और कृषि निर्यात क्षेत्रों की ओर भी कदम बढ़ाने जा रही हैं। 2005-2006 के दौरान भारत के कुल निर्यात क्षेत्र का भी काफी योगदान हैं भारत का वस्तुगत निर्यात इस वर्ष 66 अरब डॉलर से भी अधिक रहा व आयात 96 अरब डालर के लगभग रहा। यह पिछले वर्ष के कुल निर्यात में 18.1 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाता है। इस निर्यात में विभिन्न क्षेत्रों का अपना-अपना योगदान रहा। कृषि और उससे संबंधित उत्पादों का निर्यात वर्ष 2004-05 में कुल निर्यात का 16.8 प्रतिशत हिस्सा था जो 2005-2006 में बढ़कर 17.4 प्रतिशत की वृद्धि पायी हैं चमड़ा और विनिर्मित उद्योगों के निर्यात में भी तेजी देखी गयी। भारत में व्यापार हड़प्पा काल से लेकर मौर्य शक-कुषाण काल और गुप्त काल में भी अपने चर्मोत्कर्ष पर था। इन राजवंशों के शासक और व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न प्रकार के व्यापारिक समूहों तब उन्हें श्रेणियां कहा जाता था को विशेष रियायतें देते थे। इन श्रेणियों का अपना कानून तथा प्रशासन होता था। गुप्त काल में तो इन श्रेणियों को प्रशासनिक महत्व भी मिलता रहा। कुछ विशेष क्षेत्रों में यह श्रेणियां रहती थीं और शासक इन क्षेत्रों की रक्षा का वचन लेते थे। हड़प्पा काल में तो वणिक ही सर्वेसर्वा थे।अत: भारत की अर्थव्यवस्था में विशेष आर्थिक क्षेत्रों का कहीं न कहीं अपना इतिहास जरूर है। भारत में नव स्थापित विशेष आर्थिक क्षेत्रों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्रदान की गयी है। इन सेज इकाईयों के पल्लवन, संचालन और प्रोत्साहन के लिए शुल्क मुक्त आयात की व्यवस्था की गयी है। इन सेज इकाईयों को स्थापना के प्रारंभिक 5 वर्षों तक 100 प्रतिशत की आयकर छूट मिलेगी, उसके बाद 5 वर्षों तक 50 प्रतिशत की आयकर छूट मिलेगी, उसके बाद 5 वर्षों तक निर्यात से प्राप्त लाभ में 50 प्रतिशत की छूट। हालांकि यह छूट केवल इनके शैशवावस्था तक ही

प्राप्त होगी जैसे-जैसे यह विकसित होते जाएगें यह छूटें भी कम होती जाएंगी। इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों को केन्द्रीय बिक्री कर से भी छूट की सुविधा दी जाएगी हांलाकि इसमें भी समय के साथ संशेधनों का प्रावधान हैं। सेवाकर में छूट देकर भी इनके उत्पादों की लागत को कम करने का प्रयास है जिससे कि विदेशों में इनके में उत्पाद सस्ते हो जाएं और विश्व के अन्य राष्ट्रों को कड़ी टक्कर देकर भारत की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में हिस्सेदारी को बढ़ावा दें। चूंकि इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों को जमीनें राज्य सरकारें दिलाएंगी अत: राज्य सरकारों भी इन्हें प्रोत्साहित करते हुए बिक्री कर तथा अन्य शुल्कों से छूट मुहैया करायेंगी।

भारत सरकार ने इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों से सबंधित कायदे-कानूनों के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005 और विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2006 को पारित किया। आर्थिक गतिविधियों को विस्तार देकर देश को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने और रोजगार की संख्या में वृद्धि करने के लिए सरकार ने विशेषज्ञ आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005 को संसद में मंजूरी दिलायी। एकल खिड़की निपटान जैसे महत्वपूर्ण मसलों तथा नियमों के सरलीकरण के लिए 2006 में पिछले अधिनियम को परिपूरित करते हुए एक नया अधिनियम लाया गया। विशेष आर्थिक क्षेत्र के तहत ही गयी छूटों में विशेष बातें यह थी कि शुल्क, करों तथा व्यापार के लिए इन क्षेत्रों को विदेशी क्षेत्र के रूप में देखा जाता है। इकाईयों को अधिकाधिक आयात करने पर भी किसी प्रकार के लाइसेंस की आवश्यकता नहीं होगी। तीन वर्षों के भीतर इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों को विदेशी मुद्रा अर्जन का एक कुशल क्षेत्र बनना होगा जिससे कि बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा भारत में आ सके। क्योंकि विदेशी मुद्रा आज के विश्व में किसी राष्ट्र की एक विशेष आर्थिक ताकत का पैमाना माना जाता है। सरकार की इन्हीं गतिविधियों का परिणाम है कि आज भारत का विदेशी मुद्रा भंडार इतने बड़े पैमाने पर हैं। 2006 में एकल खिड़की निपटान जैसे प्रावधानों को जोड़कर सरकार ने इस क्षेत्र के लिए नियमों को काफी सरल बना दिया है। हांलाकि इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों को यह ध्यान रखना होगा कि सीमा शुल्क और आयात नीति लागू के होने के बाद ही यह क्षेत्र घरेलू बिक्री कर सकेगें। इन क्षेत्रों से होन वाले निर्यात में कोई बाधा न खड़ी हो और निर्यात समय से होता रहे इसके लिए निर्यात और आयात के समय कस्टम अधिकारियों द्वारा जांच में दूर की सहायता प्रदान की गयी है हालांकि इसके एवज में अन्य प्रावधान भी विशेष रूप से किए गए हैं। चूंकि इन क्षेत्रों में भी पूंजी की समस्या कहीं इनकी दुर्दशा का कारण न बन जाये इसलिए सरकार में इनके लिए बनाए नियमों में बैंकिंग सुविधाएं भी प्रदान की हैं। फाइलों की संख्या में कमी करते हुए इन्हें बैंक को गारंटी देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। इससे लालफीताशाही का शोर भी कम हो सकेगा। विदेशों से भी यह क्षेत्र पूंजी जुटा सकते हैं हालांकि यह इनकी अपनी विशेष जिम्मेदारियों में से एक होगी।

निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों से बनी निर्यात योजनाएं विशेष आर्थिक क्षेत्रों में अपना अच्छा पणिाम दर्शा रही हैं। पहले इनकी संख्या दस के आकड़े को भी नहीं पार कर पायी थी। लेकिन अब अनेक छूटों के कारण कृषि उत्पादों से लेकर सूचना तकनीक, इलेक्ट्रानिक उत्पाद और यंत्रों-संयत्रों के कारखाने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों का सैलाब सा आ गया है। इससे निर्यात मूल्य, मात्रा और गति में जबर्दस्त बढ़ोतरी होगी। पहले सरकार ने केवल 150 आर्थिक क्षेत्रों को बनाने की बात कहीं और इसके लिए कार्य योजना भी बनायी। लेकिन अब यह सीमा हटा दी गयी है और काफी संख्या में विशेष आर्थिक क्षेत्रों को बनाने की बात सोची गयी है और इसे कार्यरूप भी दिया जा रहा है। दो-सौ अन्य आवेदन भी विशष आर्थिक क्षेत्रों के लिए विचारणीय हैं और जल्द ही इन्हें मंजूरी मिल जाएगी। भारत में अभी विभिन्न क्षेत्रों में सेज की अनेकों इकाईयां कुशलता से कार्य कर रही हैं। निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र की भारत में पहली जन्मस्थली कांडला (गुजरात) में विशेष आर्थिक क्षेत्र न केवल स्थापित हैं बल्कि बेहतर निष्पादन भी दे रहे हैं।

तमिलनाडु राज्य का चेन्नई शहर, आंध्र प्रदेश का विशाखापट्टनम, नोएडा (उत्तर प्रदेश), सूरत (गुजरात) भी विशेष आर्थिक क्षेत्रों की सफलता के नए मानदंड गढ़ रहे हैं। विशेष बात है कि पश्चिम बंगाल ने भी इस क्षेत्र में पहल की और फाल्टा में विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना की। हालांकि इन क्षेत्रों में निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र का विकास करके ही उसे विशेष आर्थिक क्षेत्र का दर्जा दिया गया है। देश के विभिन्न राज्य अपने-अपने प्राकृतिक संसाधनों के लिए जाने जाते हैं। उड़ीसा और झारखंड अपने खनिज संसाधनों के लिए प्रसिद्ध हैं। इन राज्यों में ताँबा, विशेष तौर पर कोयला, लोहा, बॉक्साइड आदि खनिज पाए जाते हैं। इसलिए विदेशी कंपनियों का रूझान इन राज्यों राज्यों की ओर विशेष तौर पर है और यह कंपनियां इन राज्यों में विशेष आर्थिक क्षेत्रों को लेकर उत्साहित हैं पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और झारखंड में तेरह विशेष आर्थिक क्षेत्रों को मंजूरी जल्द ही दी गयी है। यह विशेष आर्थिक क्षेत्र, ऑटोमोबाइल, इलेक्ट्रानिक्स, सेवा क्षेत्र सूचना प्रौद्योगिकी जैसे तेजी से विकसित होते क्षेत्रों के लिए हैं। धातु उत्पाद, चमड़ा उत्पाद तथा ऑटो पार्ट्स भी इन क्षेत्रों मे बनाए जाएगें। फाल्टा जैसे विशेष आर्थिक क्षेत्र तो स्वयं में एक मिसाल है। आरंभ में आधारभूत संसाधनों को कमी की चुनौती के रूप में लेते हुए इसने विशेष प्रगति की । आज यह देश के पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्र का एकमात्र बहु क्षेत्रीय विशेष आर्थिक क्षेत्र है। इसकी पहुंच झारखंड, बिहार उड़ीसा, असम तथा पूर्वोत्तर राज्यों तक है और शिल्पकारों और आभूषणकारों को भी इसमें नई जीविका देने में मदद की है।

निर्यात लक्ष्य के साथ-साथ रोजगार सृजन का उद्देश्य भी विशेष आर्थिक क्षेत्रों की विशेषता हैं। विगत तीन वर्षों के दौरान विशेष आर्थिक क्षेत्रों से निर्यात 13,859 करोड़ रुपये की वृद्धि के साथ 22,51083 करोड़ रुपये हो गया है। इस प्रकार इसने 63 प्रतिशत की वृद्धि अर्जित की है। विशेष आर्थिक क्षेत्र प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के रोजगार को बढ़ावा दे रहा है। लगभग एक करोड़ 23 लाख लोगों को विशेष आर्थिक क्षेत्र के माध्यम से रोजगार मिला हैं। खुशी की बात यह है कि इस रोजगार में 40 प्रतिशत भाग महिलाओं का है। निजी क्षेत्र ने विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए 2 हजार करोड़ का निवेश किया है इसमें विदेशी निवेशकों का लगभग 600 करोड़ रुपये है जो कुल निवेश का एक-चौथाई भाग है।

विशेष आर्थिक क्षेत्रों की न्यूनतम भूमि एक हजार हेक्टेयर रखा गया है। इन क्षेत्रों का कम से कम एक चौथाई हिस्सा औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित किए जाने का भी प्रावधान है हालांकि न्यूनतम् एक हजार हेक्टेयर भूमि का नियम कुछ विशेष उत्पादों तथा हवाई अड्डों के विशेष क्षेत्र पर लागू नहीं किया जाएगा। बाकी बचे तीन चौथाई क्षेत्र में शिक्षण संस्थान, आवासीय परिसर, वाणिज्य परिसर और इसी प्रकार के अन्य परिसर बनाए जाएगें। विशेष आर्थिक क्षेत्रों के अलावा निर्यात की वृद्धि में ईओ यू भी अनुपूरक की भूमिका निभा रहे हैं। इन क्षेत्रों में स्वर्ण आभूषण, वस्त्र खासकर सूती और रेशमी वस्त्र, खाद्य और कृषि उत्पाद, लौह अयस्क आदि के लिए विशेष योजनाएं चल रही हैं और निर्यात के इन माध्यमों द्वारा यह अपना और अधिक विकास कर पाएगें।

विशेष आर्थिक क्षेत्रों को लेकर प्रारंभ में बहुत वाद-विवाद हुए। देश के एक वर्ग ने कुछ हद तक इसके लिए सरकार से अपना विरोध दर्ज कराया तो एक बहुत बड़े वर्ग ने सहयोग भी किया। चूंकि इस योजना को लेकर लोगों में बहुत सी भ्रान्तियां थीं जैसे कि इससे रोजगार घटेगें, किसानों की भूमि छिन जाएगी, राजस्व में घटोत्तरी और राजस्व घाटे में बढ़ोत्तरी होगी। लेकिन अगर हम गौर से देखें तो सच्चाई इससे कुछ इतर है। मसलन, इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों को स्थापित करते समय रोजगार सृजन को विशेष तौर से तवज्जो दी गयी। दिसंबर 2007 तक विशेष आर्थिक क्षेत्र के भीतर 5 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार मिलेगा वहीं अप्रत्यक्ष रूप से इस क्षेत्र के बाहर 10 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार मिलेगा। स्टॉकहोल्डर्स को मिलने वाले लाभांश से भी रोजगार को कुछ हद तक और बढ़ावा मिलेगा। अगर कृषि की बात करें तो यह स्पष्ट है कि सरकार ने भारत की कुल कृषि-भूमि का 0.001 प्रतिशत से भी कम क्षेत्र विशेष आर्थिक क्षेत्रों में प्रयोग किया है और प्रयोग किए गए क्षेत्र को उचित मुआवज़ा भी दिया गया है। कृषि क्षेत्र तथा खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में भी विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित करने की योजना है जिससे कृषि उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा मिलेगा और किसानों की दशा में सुधार होगी। और जहां तक बात सरकार के राजस्व घाटे या राजकोषीय घाटे की है तो यह कल्पित अवधारणा है कि घाटा होगा। चूंकि इन क्षेत्रों में सरकार की पूंजी न लगकर निजी-निवेशकों की पूंजी लगी है अत: सरकार की पूंजी की बचत होगी। वहीं सरकार कुछ वर्षों बाद इनसे अच्छी आय भी प्राप्त करने लगेगी। अत: सरकार की योजना अर्थिक विकास के लक्ष्य को सुदृढ़ योजना और बेहतर रणनीति से प्राप्त करने की है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र के शामिल होने से किसानों को उनके उत्पाद का और बेहतर मूल्य मिल सकेगा और आज के विकसित समाज में किसानों का विकास भी हो सकेगा।

(लेखिका समाजसेविका हैं)

विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए राज्य सरकारें जमीन मुहैया कराती हैं। प्रारंभ में लगभग डेढ़ सौ विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए लगभग 27 हेक्टेयर क्षेत्र का प्रावधान किया गया। देश के कुल कृषि क्षेत्र का 120 मिलियन हेक्टेयर भाग ही विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए प्रयोग किया गया है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए प्रयोग किया गया है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए प्रयोग किया गया है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों से जो लाभ मिलेगा उससे निर्यात के बेहतर निष्पादन, बुनियादी संरचना में सुधार और रोजगार के नए-नए अवसर पैदा करने में प्रयोग किया जाएगा। मंजूरी मिले विशेष आर्थिक क्षेत्रों की भूमि का अधिकांश भाग राज्य सरकारों के औद्योगिक विकास निगमों के अधिकार में है। हालांकि यह बात अलग है कि जब विशेष आर्थिक क्षेत्र मौजूद नहीं थे तब औद्योगिक विकास से संबंधित उद्देश्यों के लिए राज्य सरकारों ने इन निगमों को यह जमीन मुहैया करायी थी।

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 70 रुपये, दो वर्ष के लिए 135 रुपये, तीन वर्ष के लिए 190 रुपये का
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

..... पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर *निदेशक, प्रकाशन विभाग* को नई दिल्ली में देय हो।

DISHA - The IAS Academy
(Grooming all for the Civil Services)

Under the guidance of its Academic Directors **Dr. M.N. Singh** (English Medium) **प्रणव कुमार** (निदेशक हिन्दी प्रकोष्ठ), **DISHA** has secured over **28 selections** in 2005 IAS Examination.

SUBJECTS OFFERED
ENGLISH & हिन्दी

POL. SCIENCE & IR	भूगोल
GEOGRAPHY	इतिहास
HISTORY	समाजशास्त्र
SOCIOLOGY	राजनीति शास्त्र
PUB-AD	दर्शनशास्त्र
ECONOMICS	लोकप्रशासन
	अर्थशास्त्र
	हिन्दी साहित्य

At **DISHA** the aspirants are groomed for accomplishment and engineered for success. It is a tribute to our dedicated and learned faculty from JNU, DU, & the IITs

MAIN BRANCH
FOUNDATION COURSE : 2007, 08 & 09
BATCHES COMMENCE ON : 18th Oct., 13th Nov. & 27th Nov.

POSTAL GUIDANCE ENGLISH MEDIUM: G.S, Pol. Science, Geography, History, Economics,
पोस्टल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम): भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी साहित्य, सामान्य अध्ययन,

GENERAL STUDIES
ENGLISH/ हिन्दी माध्यम

Numerous aspirants have benefitted from our holistic **G. S.** package. The integrated package is broken into **'Modules'** and taught by the subject expert.

Indian Constitution & Polity and Current Affairs	:	**Dr. M. N. Singh.**
History & Culture -	:	**S.S.Yadav**
Geography & Environmental Issues:		**Pranav Kumar**
Indian Economy -	:	**J. Krishna**
Statistics & Mental Ability -	:	**S. P. Singh**
General Science & Technology	:	**Pranav Kumar**

The subject-expert G. S. Team of **DISHA** has successfully groomed the aspirants through class lectures and **Basic, Advance** or **Model test series.** Every aspirant can benefit from **DISHA** faculty and become the Indian bureaucrat of tomorrow.

MAIN FEATURES OF THE COURSE ARE :
(i) 500+ hrs of classroom lectures
(ii) Revised and updated study materials
(iii) Conceptual Clarity through the regular tests

2003-(11), 2004-(16); & 2005 PERFECT GROOMING AT DISHA, SOME OF OUR LUMINARIES

RANK 109 - SHUDHANSU D. MISHRA
RANK 156 - ABHISHEK KUMAR
RANK 186 - G. S. P. DAS
RANK 244 - ANUP KUMAR SAHOO

&
MANY MORE

Our Specialized faculty also provides excellent classroom guidance for UGC (JRF/NET)

Note: Fee Concession to SC/ST Candidates (**Hostel Facilities Available**)
Contact personally or write for prospectus with a DD/MO for Rs. 50/- Favouring Disha - The IAS Academy

Head Office : 585, 1st Floor, Jay Pee Complex, Bank Street, Munirka, N.D. -110 067,
Ph.: 011-65640506/07 Mob. 09818327090, E-mail : disha_the_ias_academy@yahoo.co.in
Jaipur Branch Office : 502, 5th Floor, Pink Tower, behind Sahara Chamber, Tonk Road Jaipur.
Ph. 0141-3298887, Mob. 09351447086

KH-01/07/02

विशेष आर्थिक क्षेत्रः ग्रामीण विकास में सहायक

जय सिंह

अंतरराष्ट्रीय फलक पर भारत एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। चीनी राष्ट्रपति की भारत यात्रा, अमरीका के साथ नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में समझौता और विश्व व्यापार संगठन में विकासशील देशों की तरफ से बेहिचक बुलंद होती आवाज हमें दुनिया में एक अलग पहचान दिलाने में मददगार साबित हो रही है। बात करें देश के अंदर हो रहे विकास की खासकर ग्रामीण विकास की तो प्रंधानमंत्री की दस प्रतिशत विकास दर हासिल करने की उम्मीदों के मुकाबले आज भले ही आर्थिक विकास की दर आठ प्रतिशत है मगर ग्रामीण विकास का एक नया अध्याय विशेष आर्थिक क्षेत्र के रूप में खुल रहा है।

विशेष आर्थिक क्षेत्र यानी सेज़ स्थापित करने का विचार राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार में तत्कालीन वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री मुरासोली मारन का था जो संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के कार्यकाल में साकार हो रहा है। सेज़ की स्थापना के पीछे मकसद था निर्यात के लिए एक अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगी और बिना प्रशासनिक अवरोध ा वाला वातावरण प्रदान करना ताकि अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर देश के निर्यातक अपनी मौजूदगी बढ़ा सकें और जिससे देश की आर्थिक प्रगति को मजबूती प्रदान हो सके। इसलिए विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना सार्वजनिक, गैर-सरकारी संयुक्त क्षेत्र या राज्य सरकारों के सहयोग से की जा रही है। वर्तमान में 70 विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित किए जा चुके हैं तथा 230 प्रस्ताव स्वीकृति बोड (बीओए) के पास हैं जिन्हें हरी झंडी मिलनी है। अब तक विशेष आर्थिक क्षेत्र में 10,000 करोड़ रुपयों का निवेश हो चुका है जो पिछले केवल नौ महिनों में ही हुआ है जबकि पिछले 30 वर्षों में ये निवेश केवल 2700 करोड़ रुपये का ही था। इससे इस क्षेत्र में निवेश और संभावित विकास गति का अंदाजा लगाया जा सकता है।

अब ग्रामीण विकास की बात करें तो देश की 70 प्रतिशत आबादी वाला ग्रामीण भारत अभी इस विकास के साथ कदमताल नहीं कर पाया है जबकि विशेष आर्थिक क्षेत्रों में स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में कर देश की तस्वीर बदली जा सकती है। और देखा जाए तो छः लाख से अधिक गांवों में बसने वालों की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के बिना भारत निर्माण अधूरा रहेगा फिर हम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भले ही एक आर्थिक शक्ति बन जाएं। चीन की आर्थिक प्रगति के पीछे वहां के नीति-निर्माताओं की वह कुशल और सफल सोच है जिसके तहत चीन में बड़े-बड़े विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित किए गए। हमारे यहां विशेष आर्थिक क्षेत्र औसतन एक से दो किलोमीटर के दायरे में हैं जबकि चीन के विशेष आर्थिक क्षेत्र का औसतन क्षेत्रफल 150 किलोमीटर तक है। चीन के पांच प्रमुख सेज पूरे चीन का मात्र एक प्रतिशत ही हैं लेकिन इनकी जीडीपी चीन की पूरी जीडीपी की सात प्रतिशत बैठती है और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का एक बटे पांचवां हिस्सा है।

रोजगार

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसर हैं। केंद्र सरकार की तमाम विकास और रोजगारपरक योजनाएं क्रियान्वित हो रही हैं लेकिन बेरोजगारी घटने का नाम नहीं ले रही। गांवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन का सबसे बड़ा कारण बेरोजगारी ही है। सेज के बाद ग्रामीण भारत की बेरोजगारी पर काबू पाया जा सकता है। इसके लिए सेज की स्थापना देश के उन हिस्सों में की जानी चाहिए जहां कृषि के अलावा अन्य कमाई के साधन बिल्कुल नहीं है। यदि पूरे देश के विकास और सेज से मिलने वाले रोजगार की बात करें तो बड़ी खुशनुमा और खूबसूरत तस्वीर उभरती है। प्राइसवाटर हाउस कूपर्स और एसोचेम द्वारा कराए गए एक अध्ययन के मुताबिक सन् 2007 तक सेज से पांच साल लोगों को रोजगार उपलब्ध होगा तथा सन् 2010 तक रोजगार की संख्या 15 लाख तक पहुंचा सकती है। इस अध्ययन के अनुसार सेज रोजगार और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाने के अतिरिक्त सामाजिक विकास और उन्नति का हथियार भी बन सकते हैं। वर्तमान में सेज से डेढ़ लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है लेकिन भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के लिये ये संख्या ऊंट के मुंह में जीरे के समान है विशेषकर तब जब दो तिहाई आबादी गांवों में रहती हो। यही कारण है कि महानगरों और नगरों के इर्द-गिर्द स्थापित होने वाले विशेष आर्थिक क्षेत्रों के खिलाफ विरोध के स्वर भी उठने लगे हैं।

विरोध

सेज के स्वागत के साथ इसका विरोध करने वाले भी कम नहीं। दरअसल सेज का ये शुरूआती दौर है। सेज नीति, उसका क्रियान्वयन, रोजगार, कृषि भूमि, खाद्य समस्या और सेज का दुरुपयोग। सेज नीति पर खुद केंद्र सरकार के दो मंत्रालयों वित्त और उद्योग में एक राय नहीं है। वित्त मंत्रालय का कहना है कि सेज़ से सरकार को अगले चार वर्षों में 1,000 अरब रुपये के कर राजस्व का नुकसान होगा। इसके उलट वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय राजस्व घाटे की नहीं राजस्व प्राप्ति की बात कर रहा है। मंत्रालय के मुताबिक सेज से निर्यात में खासी बढ़ोतरी होगी जिससे सरकारी खजाने में 40 हजार करोड़ रुपये राजस्व के रूप में आयेंगे। उद्योग मंत्रालय का यह भी मानना है कि सेज से बड़े पैमाने पर रोजगार मिलेगा। रोजगार तो मिलेगा इसमें कोई संशय नहीं बल्कि खाद्य प्रसंस्करण

और कृषि के अलावा बाहर से भी सेज को लेकर विरोध जारी है। दरअसल सेज के लिए अधिगृहित की जाने वाली जमीन को लेकर बड़ा विरोध हो रहा है। पहले विरोध कृषि योग्य भूमि को सेज के लिए अधिग्रहण पर है। यदि फसली कृषि भूमि को सेज के लिए लिया छोड़ा गया तो खाद्यान्न का संकट खड़ा हो सकता है। यदि हजारों एकड़ उपजाऊ जमीन को उद्योगों, निर्यातों और आवास के लिए उपयोग में लाया जाएगा तो खाद्यान्न के मामले में हम आत्मनिर्भरता खो देगे। किसानों की जमीन चली जाएगी तो वे कमाएंगें क्या और खाएंगे क्या और जब खुद नहीं खाएंगे तो देश क्या खिलाएंगे। सवाल वाजिब है लेकिन उद्योग मंत्रालय के मुताबिक .000012 प्रतिशत क्षेत्र ही सेज के लिए आरक्षित होगा। इस तरह सेज के प्रति उठते विरोध अपनी जगह पर हैं अगर सेज से होने वाले फायदों के आगे ये सब कम लगते हैं।

अचल संपत्ति से लेकर सूचना टेक्नोलॉजी और खाद्य प्रसंस्करण तक विशेष आर्थिक क्षेत्र के दायरे में आने से सरकार के लिए सेज नीति में व्यापक सावधानियां बरतनी होगी। फिलहाल सेज के विरोध के पीछे यहीं कारण हैं। दरअसल अचल संपत्ति के कारोबार को सेज के तहत मिलने वाले कर लाभों पर पक्ष-विपक्ष सभी को एतराज है। रीयल एस्टेट गतिविधियों को सेज के तहत मंजूर न करने का उद्योग सचिव दावा कर रहे हैं मगर राज्यों में स्थापित होने वाले कई सेज के लिए ऐसे क्षेत्र चुने गए हैं जो बेशकीमती हैं। आशंका इसी बात पर जताई जा रही है कि कहीं इन जमीनों को हासिल करने के लिए ही तो सेज का सहारा नहीं लिया जा रहा। सेज के लिए जमीन चुनने का अधिकार राज्यों के पास है। राज्यों को ही तय करना है कि कौन सी जमीन सेज के लिए अधिगृहित की जाए जबकि उद्योग मंत्रालय किसानों के साथ भागीदारी योजना को प्रोत्साहन दे रहा है जिसके तहत सेज के लिए किसानों से खरीदी गई जमीन का 75 प्रतिशत भाग नकद खरीदा जाएगा तथा बाकी 25 प्रतिशत उस जमीन पर स्थापित होने वाली सेज इकाई। फर्म में शेयर के रूप में हिस्सेदारी होगी।

आईटी सेज से सरकार को लाभ ही लाभ है क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश काफी है और रोजगार के अवसर भी कहीं अधिक हैं। इसलिए जानकारों का मानना है कि आईटी के लिए आईटी पार्कों की स्थापना को प्राथमिकता देनी चाहिए खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय के मुताबिक सेज से खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय के मुताबिक सेज से खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में विकास तेजी से होगा। निर्यात बढ़ेगा सरकारी आमदनी बढ़ेगी और लोगों को रोजगार मुहैया होगा। मंत्रालय ने मेगाफूड टैक्नोलॉजी पार्क को सेज का दर्जा देने का प्रस्ताव रखा है। सेज के तहत विशाल फूड पार्कों की स्थापना की जाएगी। यहां पर सेज का विरोध थोड़ा कम है। चिंता सिर्फ इस बात की है कि खाद्य पदार्थों के निर्यात से घरेलू बाजार में माल की किल्लत बढ़ जाएगी जिससे मंहगाई बढ़ने का खतरा पैदा हो सकता है। वित्त मंत्रालय फूड उद्योग को कर रियायतें देने पर राजी हो गया है। 2007-08 तक मंत्रालय फूड उद्योग को उत्पाद शुल्क रहित करने के लिए राजी हो गया है। उल्लेखनीय है कि पिछले दो सालों में उत्पाद शुल्क की दर 32 प्रतिशत से घटकर 8 प्रतिशत पर आ गई है। नाबार्ड से भी फूड उद्योग को सेज के अंतर्गत वित्तीय सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त केंद्र ने भी एक लाख करोड़ रुपये की मदद का भरोसा दिलाया है। खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय ने भी फूड समस्या और मंहगाई रोकने के लिए जरूरी कदम उठाए हैं जिनमें सबसे प्रमुख है मेगा फूड पार्कों में होने वाले उत्पादन का 50 प्रतिशत ही निर्यात किया जा सकेगा। बाकी 50 प्रतिशत घरेलू बाजार के लिए होगा।

विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित कर देश की आर्थिक प्रगति तो सुनिश्चित होगी ही। साथ-साथ बेरोजगारी से भी निजात मिल सकती हैं लेकिन इसके लिए सरकार को सेज नीति में आवश्यक बदलाव के साथ ही सेज गतिविधियों पर भी पैनी नजर रखनी होगी। देश की कृषि और खाद्यान्न जरूरतों को ध्यान में रखना होगा और सेज से विस्थापित होने वालों के पुनर्वास, राहत और रोजगार की समुचित व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच तालमेल होना आवश्यक है। सेज के लिए कृषि भूमि चली जाएगी तो किसानों का क्या होगा। इस चिंता को सरकार टूट कर सकती है। ऐसी नीतियां बनाई जाएं कि कृषि और उद्योग एक साथ पनप सकें जिससे ग्रामीण विकास को भी रफ्तार मिलेगी। यदि ग्रामीण विकास को भी रफ्तार मिलेगी। यदि ग्रामीण विकास की योजना को ग्रामीण क्षेत्रों में सेज के साथ आगे बढ़ाया जाए तो ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक ढांचे को मजबूती प्रदान होगी और रोजी-रोटी के लिए अपना घरबार छोड़ने वालों को कहीं और जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी और पलायन जैसी समस्या काफी हद तक सुलझ सकेगी। इस प्रकार सेज का स्वागत किया जाना चाहिए।

(लेखक पत्र सूचना कार्यालय में सूचना सहायक हैं)

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। कुरुक्षेत्र में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, कुरुक्षेत्र कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

पुष्पेश पंत

पिछले दशक से अंतर्राष्ट्रीय रंगमच पर एक नये अभिनेता उदय हुआ है- नाम है विश्वव्यापार संगठन अर्थात डब्लू. टी. ओ.। चंद ही वर्षों में इस अंतरराष्ट्रीय संगठन की कई छोटे-छोटे राज्यों से ही नहीं बड़ी शक्ति के रूप में पहचाने जाने वाले देशों से भी बढ़ गई है। शुरूआत हुई थी गैट से। इस आर्थिक राजनयिक अभियान के छोटे से नाम का विस्तार जरूरी है बात आगे बढ़ाने के पहले। गैट संक्षेप है जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एण्ड टैरिफ्स का। यह उस महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट का हिस्सा था जिसके तहत मित्र राष्ट्रों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करने की ठानी थी। ब्रेटन बुडस व्यवस्था हो जिसके आधार पर विदेशी मुद्रा विनिमय को नियमित किया जाना था या विश्व बैंक या अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं गैट उसी पहल के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा था। इस बात को भी नहीं नकारा जा सकता कि इस तरह की पेशकश की बड़ी जरूरत थी। द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने तक यह बात बिल्कुल साफ हो चुकी थी कि उपनिवेशवाद के दिन अब लद चुके हैं। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के दौर में कच्चे माल के भंडार और लाभप्रद बाजारों पर औपनिवेशिक ताकतों का कब्जा था। इसके चलते अंतर्राष्ट्रीय व्यापार औपनिवेशिक मालिकों की साम्राज्यवादी प्राथमिकताओं के आधार पर ही कमोबेश चलता था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अनेक नवोदित राष्ट्र जिनमें भारत भी शामिल था इस शिकंजे से निकलने को छटपटा रहे थे। उनकी इच्छा थी कि अपने संसाधनो का उपयोग वह अपनी इच्छा अनुसार अपने आर्थिक विकास के लिए स्वाधीनता से कर सके। इस पृष्ठभूमि में गैट में उनकी रुचि समझ में आती है। शीत युद्ध के युग में दोनों ही महाशक्तियों में विदेशी सहायता का उपयोग आर्थिक सोच से नहीं अपनी सामरिक जरूरतों के अनुसार किया। इस प्रवृत्ति ने भी गैट को और महत्वपूर्ण बनाया। अनेक देशों को यह बात महसूस हुई कि बिना शर्त अपने राष्ट्रहित को मद्देनजर रखते हुए यदि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा-दिशा तय की जाए तो बेहतर होगा। गैट में यह संभावना नजर आती रही। 1990 के दशक तक गैट के तहत दर्जनों आर्थिक राजनयिक दौर संपन्न हुए और कमोबेश इसका फायदा विकासशील देशों को मिला।

1990 के दशक तक यह बात बिल्कुल साफ हो चुकी थी कि आने वाले वर्षों में गैट से काम नहीं चल सकता। डंकल ड्राफ्ट को लेकर जो बहस शुरू हुई उसने विकसित और विकासशील देशों को एक दूसरे के आमने सामने विरोधियों के रूप में खड़ा कर दिया था। कुछ लोगों का मानना था कि सोवियत संघ के पतन से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि आर्थिक जीवन में साम्यवादी विचारधारा बिल्कुल अक्षम और असफल साबित हो चुकी है। माओ के देहावसान के बाद ही जनवादी चीन ने भी चार महान आधुनिकीकरणों का रास्ता अपनाया जो परोक्ष रूप से पूंजीवादी सुधारों को स्वीकार कर अपने आर्थिक विकास की दर तेज करने वाला था। उस वक्त भारत ने डंकल मसौदे का व्यापक विरोध किया गया। तब तर्क यह लिया जा रहा था कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अंतरनिर्भरता की बात करना बिलकुल बेकार है और इस मसौदे को स्वीकार कर भारत कभी भी स्वावलंबी या आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बन सकता। उस वक्त भारत में नरसिंह राव प्रधानमंत्री थे और जाने कैसे पलक झपकते नाट्कीय माहौल में भारत ने डंकल मसौदे में प्रस्तावित विश्व व्यापार संगठन को स्वीकार कर लिया। यहां इस ऐतिहासिक घटनाक्रम की विस्तार से पड़ताल या विश्लेषण की गुंजाइश नहीं। तब भी इन बातों को याद दिलाना जरूरी है कि आज के विश्व व्यापार संगठन की असलियत को समझा जा सके।

सबसे पहली बात गांठ बांधने की यह है कि विश्व व्यापार संगठन एक ऐसी अजीबोगरीब अंतर्राष्ट्रीय इकाई है जो बहुराष्ट्रीय तो है पर जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह हर सदस्य राष्ट्र को प्रतिनिधित्व देने वाला कतई नहीं समझा जा सकता। संयुक्त राष्ट्र संघ में व्याप्त विषमता और भेदभाव के चलते उस संगठन को भी जनतांत्रिक मानने वाला नादान ही समझा जा सकता है। विश्व व्यापार संगठन ने गैट वाले आर्थिक राजनय की बुनियाद पर खुद को विश्व व्यापार का थानेदार नियुक्त कर लिया है। कहने को सारे फैसले जनतांत्रिक परामर्श के आधार पर लिये जाते हैं पर वास्तव में ताकतवर और संपन्न राष्ट्रों और गरीब कमजोर देशों के बीच की दर्दनाक खाई यहां भी हर वक्त देखने को मिलती है।

21 वीं सदी के आरंभ तक विश्व व्यापार संगठन की कलई तीसरी दुनिया में ही नहीं बल्कि पश्चिम के संपन्न देशों में भी खुलने लगी थी। वहां रहने वाले जो लोग अपेक्षाकृत कम संपन्न थे इस बात को समझने लगे थे कि डब्लू.टी.ओ के नुस्खे के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को संचालित करने से उनके अपनी रोजी-रोटी भी नुकसानदेह ढंग से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। सस्ते और कार्यकुशल मजदूरों की तलाश में अमेरिकी तथा पश्चिमी उत्पादक चीन भारत तथा एशिया के अन्य देशों

की तरफ देखने लगे। इन देशों में अपने लिए काम करने वालों के कल्याण और बीमें आदि जैसी परेशानियों के सरदर्द से भी उन्हें आसानी से छुटकारा मिल जाता था। भारत जैसे देशों में सूचनाक्रांति का लाभ उठाते हुए कॉल सेंटर और बी.पी.ओ जैसे काम काज में बड़ी तेजी से बढ़त बना ली जिससे अमेरिका की सिलिकोन वैली तक में टक्नोलॉजी में माहिर गोरों को अपनी खुशहाली जोखिम में पड़ती नजर आने लगी। पिछली बार अमेरिकी राष्ट्रपति की चुनाव में भारतीय बी.पी.ओ का मसला काफी महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया था। एक और बात पश्चिमी देशों को परेशान करने वाली रही है। शुरू के दौर में उन्होंने अपने यहां से प्रदूषण पैदा करने वाली और कम वेतन देने वाली औद्योगिक इकाइयों का तबादला एशिया अफ्रीका में करने की शुरूआत की थी। आज इसके बारे में दरिद्र देशों में भी असंतोष और आक्रोश फैलने लगा है खासकर उस हालत में जब डब्लू.टी.ओ का कोई लाभ आम आदमी को होता नजर नहीं आ रहा है।

अगर दो टूक कहा जाए तो विश्व व्यापार संगठन का सोच निरंकुश बाजार के तर्क वाला है। सभी कुछ मांग और पूर्ति के समीकरण के अनुसार साधा जाना चाहिए और यदि किसी तरह की कानूनी बेड़ियां न पहनाई जाए तो यह बात सभी को समझ आ जानी चाहिए की अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए और बेहतरी के लिए हर व्यक्ति भरपूर मेहनत करेगा और प्रतिस्पर्धा का लाभ सभी को मिलेगा। यह बात सब जानते हैं कि वास्तविक जीवन में ऐसी आदर्श स्थिति कभी कहीं नहीं रहती। मुक्त व्यापार और खुले बाजार का लाभ ताकतवर और अमीर कानूनी अंकुश के अभाव में सबसे ज्यादा उठा सकते हैं। भारत में आर्थिक उदारीकरण डब्लू.टी.ओ के नुस्खे को अपनाने से भिन्न है। इसीलिए सत्तारूढ़ सरकार को चाहे वह किसी भी दल की हो यह मजबूरी रहती है कि वह यह दलील देती रहे कि आर्थिक सुधार मानवीय चेहरे के साथ ही लागू किए जाएंगे। समझदारी इसी में है कि हमलोग चेहरे और मुखौटे में अंतर करना सीखें।

बहरहाल भारत के और अन्य तमाम विकासशील देशों के संदर्भ में यह बात उजागर हो चुकी है कि डब्लू.टी.ओ का दबाव निरंतर हम पर अपने बाजार उनके लिए अबाध रूप से खुले छोड़ने के लिए बना रहता है। सीमा शुल्क घटना हो या निर्यात प्रोत्साहित करने वाली रियायतें खत्म करना, आयात को सीमित करने के लिए संतुलन करने वाले करों का अंत हो या अबतक वर्जित क्षेत्र में विदेशी पूंजी और उद्यम को प्रवेश करने देना यह सब इसी का उदाहरण है। जहां दूसरी ओर भारतीय निर्यात, उद्यमों या कमाऊ सेवाओं की बात होती है तो इनकी राह में तरह-तरह के रोड़े अटकाये जाते हैं। कभी गुणवत्ता में खोट निकाली जाती है तो कभी मानवाधिकारों के उल्लघंन या प्रदूषण बढ़ाने का आरोप लगा भारत के हाथ बांधे जाते हैं। यह डब्लू.टी.ओ का ही कमाल है कि आज भारत के किसान और मजदूर खुद को एक दूसरे का बैरी देख रहे हैं और अबतक सरकारी संरक्षण और सहायता के मोहताज रहे भारतीय उद्यमी पूंजीपति स्वावलंबन का सारा हठ छोड़ विदेशी आकाओं के आगे पीछे सहर्ष घूम रहे हैं। जो बात कोकाकोला जैसे झागदार शरबतों से शुरू हुई थी वह अत्याधुनिक हाइटेक वाली दवा निर्माता कंपनियों तक पर लागू होने लगी है। इनमें अधिकांश ने बिना संघर्ष के ही घुटने टेक दिए हैं और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए बिचौलिया ठेकेदारी शुरू कर दी है। इनफोसिस हो या विप्रो, निकोलस पीरामल हो या रनबैक्सी इनकी कमाई मौलिक शोध पर नहीं पर समय रहते नई पेटेंट प्रणाली के लागू किए जाने के पहले नकल की अक्लमंदी पर ही ज्यादा टिकी है।

डब्लू.टी.ओ का अध्ययन करने वाले विशेषज्ञ इसके इर्द-गिर्द लफ्फाजी का ऐसा तिलस्मी जाल बुनते हैं कि अक्सर सर्वाधिक महत्व के मुद्दे उपेक्षित रह जाते हैं। मसलन विश्व व्यापार व्यवस्था का संस्थागत संगठन या इसके चार्टर की विभिन्न धाराओं की कानूनी पेचीदगिया ही विद्वानों के बीच बहस को गर्म रखती है। हमारी समझ में यह ध्यान बंटाने वाली रणनीति है। असली बात यह है कि विश्व व्यापार संगठन द्वारा थोपी जा रही व्यवस्था कुल मिलाकर अमीर पश्चिमी देशों की एक और कोशिश है अपने एकाधिकार और वर्चस्व को बचाये बनाए रखने की। इसी का एक हिस्सा है नई पेटेंट प्रणाली को थोपना। प्राणरक्षक दवाईयां हो या कंप्यूटर सोफ्टवेयर इनकी कीमतें लागत से कई हजार गुणा ज्यादा तय की जाती है और वह विकासशील देशों में जरूरतमंद लोगों की पहुंच से बाहर ही रहती है। इसके विपरीत जो कुछ भी भारत जैसे देश बेचना चाहते हैं उसे किसी न किसी बहाने वर्जित निषिद्ध करार दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई भारतीय कंपनी दवा या खाने की चीज बनाती है तो अमेरिकी बाजार में उसे बेचने के लिए उसे अमेरिकी मानक संस्थानों और सरकारी एजेंसियों से प्रमाणपत्र लेना पड़ता है। ऐसी ही रोक टोक और लगभग नस्लवादी भेदभाव तब देखने को मिलता है जब भारतीय डॉक्टर इंजीनियर या कुशल कारीगर अमेरिका या यूरोप में अस्थाई रूप से ही सही काम करना चाहते हैं। रेडीमेड कपड़ें हों या विद्यार्थी और श्रमिक अमेरिका और यूरोपीय समुदाय के देशों में इस विषय में कोटा तय कर रखा है। अब इनसे कौन पूछे की कोटा मुक्त बाजार में नहीं चल सकता। विडंबना तो यह है कि वही लोग जो भारत से यह कहते हैं कि उसे कृषकों को कर में छूट या अनुदान नहीं देना चाहिए वह स्वयं अपने किसानों को खुले हाथ से भरपूर मदद देते हैं।

इन्हीं सब बातों को देखते विश्व व्यापार संगठन के दोहा दौर में दोनों पक्षों के बीच भयंकर भिड़ंत हुई थी। भारत जैसे देशों का मानना था कि विदेशियों को बैंकिंग, इंश्योरेंस जैसी वित्तीय सेवाओं और खुदरा व्यापार तथा मीडिया में प्रवेश की सुविधा तभी ली जा सकती है जब भारत को अपने श्रमिक और सेवाएं पश्चिमी उपभोक्ताओं तक किसी बंदिश का सामना न करना पड़े। संवाद गूंगे और बहरों का तब से अबतक लगातार चल रहा है पर प्रगति रत्ती भर नहीं हुई। सबसे अजीब बात तो यह है कि दोहा के मुद्दों को भुलाकर आज इस बहस में सिंगापुर के मुद्दे ज्यादा सुर्खियों में छाये हुए हैं। जिन्हें सिंगापुर के मुद्दे कहा जाता है उनका कुल लुब्बो-लुबाब यह है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाना

चाहने वाले देशों को मानवाधिकार के मामले में, पारदर्शी प्रशासन और भ्रष्टाचार से छुटकारा पाने के लिए ठोस विश्वसनीय कदम उठाने पड़ेंगे। यह जोड़ने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इन सभी फैसलों की विश्वसनीयता पश्चिमी देश खुद तय करेंगे।

दोहा में विकासशील देशों में थोडी बहुत राहत महसूस की थी। तब अमेरिका और अन्य ताकतवर देश यह स्वीकार करने को मजबुर हुए थे कि जहां तक बौद्धिक संपत्ति से जुड़े व्यापार संबंधी अधिकारों (ट्रिप्स) का प्रश्न है जनहित में स्वास्थ्य के क्षेत्र में कोई आपात का सामना करने पर सरकारें सीमित समय के लिए इसका उल्लंघन कर सकती है। इस बात को कबूल करने के दो प्रमुख कारण थे एक तो 9/11 के आतंकवादी हमले के बाद असुरक्षा और आशंका से घीरे अमेरिका को दुनिया भर में दोस्त तलाशने की जरूरत पर गई थी। दूसरी ओर भारतीय उद्यमी डॉ. अब्दुल हमीद ने बड़े जीवट के साथ यह दिखला दिया था कि एडस की महामारी के उपचार के लिए सस्ती दवाइयों को वह ईजाद कर चुके हैं और चाहे जो भी हो जरूरतमंद अफ्रीकियों को यह सुलभ करायेंगे।

तबसे अबतक बहुत सारा पानी जाने कितनी नदियों में बह चुका है। भारत को बहलाने-फुसलाने के लिए अमेरिका ने उसका वर्णन विकासशील देश के रूप में करना छोड़ दिया है और वह अब उसे उद्दीयमान शक्ति के रूप में पुकारने लगा है जिसकी बिरादरी दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील बाली है। कभी और भारत रूस और चीन का त्रिकोण प्रचारित किया जाता है अमेरिका और यूरोपिय समुदाय को संतुलित करने वाला। इस सबको सच मानने वाला निपट भोला ही कहा जा सकता है। दोहा के बाद सीऐटल में जिस तरह के हिंसक विरोध का सामना विश्व व्यापार संगठन की बैठक में भाग लेने आये प्रतिनिधियों को करना पड़ा था उसने यह बात अच्छी तरह झलका दी कि इस मामले में व्यापक सर्व सहमति का कितना अभाव है। यह सुझना भी धूर्तता पूर्ण है कि विश्व व्यापार संगठन से मुंह मोडना घड़ी की सूइयां पीछे लौटाने जैसा निरर्थक प्रयास है। समझदारी इसी में है कि भारत अपने आकार और ऐतिहासिक अनुभव को ध्यान में रखते हुए सिर्फ ऐसे समझौतों पर हस्ताक्षर करे जो वास्तव में राष्ट्रहित में हों।

(लेखक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं)

मणिपुर में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर अमल

मणिपुर में ग्रामीण विकास के लिए जलापूर्ति, आवास, सड़क निर्माण और रोजगार से संबंधित कार्यक्रमों पर अमल शुरू हो गया है।

ग्रामीण जलापूर्ति - त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम के अंतर्गत वर्ष 2004-05 में 70 बस्तियों को और 2005-06 में 80 बस्तियों को जल की आपूर्ति की गई है। वर्ष 2006-07 में 47 बस्तियों के लिए जलापूर्ति की व्यवस्था की जा रही है। इनमें वे बस्तियों भी शामिल हैं, जहां पानी की कमी हो गई है या पानी की गुणवत्ता खराब है।

ग्रामीण आवास - वर्ष 2005-06 के दौरान 3996 आवास उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि 4962 आवासों का निर्माण किया गया, जो लक्ष्य से 24.17 प्रतिशत अधिक है। केंद्र ने 2005-06 के लिए 8.24 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की थी, जबकि मार्च 2006 तक 8.76 करोड़ की राशि जारी की गई।

ग्रामीण सड़कें - मणिपुर सरकार ने प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अंतर्गत वर्ष 2004-05 के दौरान 18 बस्तियों के लिए 394.77 किलोमीटर लंबी सड़कों का निर्माण किया, जिसके लिए 18 करोड़ रुपये की सहायता मिली। 2005-06 में 32 बस्तियों के लिए 282.58 किलोमीटर लंबी सड़कें बनाई गईं, जिसके लिए केंद्रीय सहायता 6.33 करोड़ रुपये मिली। भारत निर्माण योजना के अंतर्गत 111 किलोमीटर लंबी नई सड़कों से गांवों को जोड़ा गया और 171.62 किलोमीटर लंबी सड़कों को बेहतर बनाया गया इससे 40 बस्तियों को लाभ हुआ है। वर्ष 2006-07 में अब तक 29.61 किलोमीटर लंबी सड़कों का निर्माण किया जा चुका है।

ग्रामीण रोजगार - राज्य सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून के अंतर्गत मेंगलोग जिले की पहचान की है। वर्ष 2006-07 के दौरान 17800 परिवारों को और 43700 व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराए गए। मणिपुर के लिए स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अंतर्गत 5 विशेष परियोजनाएं - खुंबी की खेती, बांस, मछलीपालन, हथकरघा और डेयरी विकास स्वीकृत की गई। इनकी कुल परियोजना लागत 15.51 करोड़ रुपये है, जिसमें केंद्रीय सहायता लगभग 9.89 करोड़ रुपये की है। ये परियोजनाएं मणिपुर में इस समय लागू की जा रही हैं। इन विशेष परियोजनाओं के लिए केंद्र अब तक 6.54 करोड़ रुपये की राशि जारी कर चुका है।

विश्व व्यापार संगठनः सहमतियां और मतभेद

आलोक कुमार तिवारी

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय व्यापार को विकास का माध्यम बनाने के लिये विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने 'प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य समझौते (गैट) को सहमति दी। इसका उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों के बीच अंतरराष्ट्रीय व्यापार में आने वाली बाधाओं को कम करके स्वतंत्र व्यापार को बढ़ावा देना था ताकि व्यापार के माध्यम से विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सके। इसी 'गैट' की आठवें दौर (ऊरुग्वे दौर) की वार्ता के परिणामस्वरूप विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी 1995 से अस्तित्व में आया।

विश्व व्यापार संगठन में गैट के पारंपरिक विषयों जो कि वस्तुओं में व्यापार से संबंधित थे, के अतिरिक्त बौद्धिक संपदा अधिकारों के साथ संबंधित व्यापारिक पहलुओं (ट्रिप्स), व्यापार से संबंधित निवेश के उपाय (ट्रिप्स), सेवाओं से संबंधित व्यापार के संबंध में सामान्य समझौते (गैट) बातचीत में शामिल किये गये। विश्व व्यापार संगठन, गैट की तुलना में सुदृढ़ वैधानिक आधार वाली अधिक शक्तिशाली संस्था है जो कि उपर्युक्त विषयों में हुये समझौतों के पालन को सुनिश्चित कराने का प्रयास करती है। भारत इस संस्था का संस्थापक सदस्य है। इसकी स्थापना से ही इसके सदस्यों की संख्या बढ़ती जा रही है जो कि आज 149 हो चुकी है, सऊदी अरब इसका 149वां सदस्य देश है और करीब 30 देश इस संगठन के सदस्य बनने की प्रक्रिया में हैं।

विश्व व्यापार संगठन की सर्वोच्च संस्था मंत्रिस्तरीय सम्मेलन है जिसमें सभी सदस्य देशों के मंत्री सदस्य हैं। इस संस्था की दो वर्ष में कम से कम एक बार बैठक होनी आवश्यक है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से अब तक इसकी छह बैठकें हो चुकी हैं जिसमें अंतिम बैठक दिसंबर 2005 में हांगकांग में संपन्न हुई। सैद्धांतिक रूप में विश्व व्याार संगठन सदस्य राष्ट्रों को पक्षपात रहित, नियम आधारित, पारदर्शी एवं बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था उपलब्ध कराने के उद्देश्य से गठित किया गया था ताकि सभी सदस्य राष्ट्र व्यापार से होने वाले लाभों को प्राप्त कर सकें तथापि संगठन की स्थापना से ही इसकी विभिन्न मंत्रिस्तरीय बैठकों में विकसित एवं विकासशील देशों के बीच विवाद उत्पन्न होते रहे हैं जिसका प्रमुख कारण विकसित देशों द्वारा स्वतंत्र व्यापार एवं वैश्वीकरण से होने वाले लाभों को स्वयं तक ही सीमित रखने की मानसिकता है। संगठन की विभिन्न बैठकों में विवादित मुद्दों में कृषि पर समझौता, गैर-कृषि बाजार पहुंच (नामा), ट्रिप्स (पेटेंट व्यवस्था), ट्रिम्स, टेक्सटाइल एवं वस्त्र संबंधी समझौते आदि शामिल हैं जिसमें कृषि पर समझौते संबंधी मुद्दा अति महत्वपूर्ण हो गया है जो कि विश्व व्यापार संगठन के दो-तिहाई से अधिक विकासशील सदस्य देशों में आजीविका का सर्वप्रमुख स्रोत है।

विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अंतर्गत कृषि पर समझौते में तीन प्रमुख बातें शामिल हैं। प्रथम, बाजार पहुंच या घरेलू बाजार को खोलना जिसके अंतर्गत सभी देशों को अपने बाजारों में आयातों पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त करना होगा ताकि व्यापार में आने वाली बाधाएं दूर हो सकें। इन प्रतिबंधों में मात्रात्मक आयात प्रतिबंध (कोटा), सरकार द्वारा व्यापार करना तथा उसका नियंत्रण आदि शामिल हैं। इन सभी प्रतिबंधों को हटाकर इन्हें तटकर में परिवर्तित करना है तथा धीरे-धीरे तटकर की दरों में कटौती करना है। विकसित देशों को सन् 2000 तक तटकर की दरों में 36 प्रतिशत तथा विकासशील देशों को 2004 तक 24 प्रतिशत कमी करनी है। कटौती के बाद भी विकसित देशों में तटकर की दरें उच्च बनी हुई हैं क्योंकि ऊरुग्वे दौर के पहले भी विकसित देशों में तटकर की दरें काफी अधिक थीं। द्वितीय, घरेलू समर्थन में कमी जिसके अंतर्गत घरेलू समर्थन को दो भागों में विभाजित किया गया है, एक-व्यापार को विकल्पित न करने वाली सहायता जिसके तीन उप हिस्से हैं-क) ग्रीन बाक्स ख) ब्लू बाक्स ग) स्पेशल एवं डिफ्रशिंयल बाक्स। संगठन के प्रावधानों के तहत व्यापार को विरूपित करने वाली सहायता (अंबर बाक्स के अंतर्गत) का आकलन समर्थन के समग्र माप (एएमएस) के आधार पर करना है तथा फिर उसे समाप्त करना है। कृषि पर समझौते के अंतर्गत विकसित देश 6 वर्ष की अवधि में समर्थन के समग्र माप में 20 प्रतिशत तथा विकासशील देश 10 वर्ष की अवधि में 13 प्रतिशत की कटौती करेंगे। इसमें विकसित देशों में उत्पादन के मूल्य के 5 प्रतिशत से कम तथा विकासशील देशों में उत्पादन मूल्य के 10 प्रतिशत से कम घरेलू समर्थन होने पर उन्हें कटौती से मुक्त रखा गया है। 'ग्रीन बाक्स' के अंतर्गत वह सरकारी सहायताएं आती हैं जो कि अनुसंधान, रोग नियंत्रण, आधार संरचना, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण संबंधी कार्यक्रमों के लिये दी जाती हैं। ग्रीन बाक्स के अंतर्गत दी जाने वाली सहायता 'अधिकतम की सीमा' तथा 'कम करने की वचनबद्धता से मुक्त है। 'ब्लू बाक्स' के अंतर्गत किसानों को हानिपूर्ति भुगतान या उत्पादन को सीमित रखने के लिये दी जाने वाली सहायता शामिल है। यह सहायता कम करने की वचनबद्धता से मुक्त है किंतु इसे दिये जाने की अधिकतम सीमा है। 'स्पेशल एवं डिफ्रेशिंयल बाक्स' विकासशील देशों में गरीब उत्पादकों को दी जाने वाली विविध सहायताओं को शामिल करता है। तृतीय,

तालिका-1

कृषि पर समझौते के अधीन कम करने की वचनबद्धता

	विकसित देश (1995-2000)	विकासशील देश (1995-2004)
(1)	(2)	(3)
तटकर (आधार 1986-88) सभी कृषि वस्तुओं के लिये औसत कटौती	36%	24%
घरेलू समर्थन, समर्थन के समग्र माप के आधार पर (आधार 1986-88)	20%	13%
निर्यात सहायता	21%	14%

निर्यात सहायता कम करना जिसके अंतर्गत निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिये दी जाने वाली सहायता को विकसित देशों को 6 वर्ष की अवधि में 21 प्रतिशत तथा विकासशील देशों को 10 वर्ष की अवधि में 14 प्रतिशत कम करना है। (देखें तालिका-1)

कृषि पर समझौते को लेकर प्रारंभ में विकासशील देश बहुत उत्साहित थे क्योंकि विकासशील देशों को प्राथमिक वस्तुओं (कृषि एवं संबंधित वस्तुओं) के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ की स्थिति होती है। समझौते के प्रावधानों के तहत मुक्त व्यापार होने की स्थिति में विकासशील देशों के निर्यात बढ़ते तथा इन देशों का विदेशी मुद्रा अर्जन भी बढ़ता जिस सबका सम्मिलित प्रभाव इन देशों की विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता किंतु वास्तविकता इसके ठीक विपरीत रही क्योंकि विकसित देशों ने समझौते के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं का ईमानदारी से पालन नहीं किया। विकसित देश अत्याधिक मात्रा में घरेलू समर्थन के द्वारा अपने यहां उत्पादित कृषि वस्तुओं की कीमतों को 'कृत्रिम' रूप से नीचा रखते हैं जिस कारण विकासशील देशों को अपने कृषि उत्पादों के निर्यातों को बढ़ाने में समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विकसित देशों में कृषि आधुनिक तकनीक व यंत्रों से होती है। साथ ही कृषि की बेहतर सुविधाओं के कारण विकसित देशों में उत्पादन की लागतें कम रखने में सहायता मिलती है। ऊपर से विकसित देशों द्वारा भारी मात्रा में दी जाने वाली सब्सिडी विकसित देशों में कृषि उत्पादों की कीमतों को और नीचे कर देती है जबकि विकासशील देशों में खेती का तरीका पारंपरिक होता है तथा आधुनिक तकनीक, कृषि यंत्रों आदि का अभाव पाया जाता है। इसके साथ ही दबाव में आकर विकासशील देशों की सरकारों ने किसानों को दी जाने वाली सहायता भी या तो अत्यंत कम कर दी है या समाप्त कर दी है। इसके परिणामस्वरूप इन देशों में उत्पादित कृषि पदार्थों की कीमतें ऊंची हो जाती है और अंतरराष्ट्रीय बाजार में विकसित देशों के कृषि उत्पादों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पातीं। कुल मिलाकर एक अत्यंत असमान प्रतियोगिता देखने को मिलती है जो कि विकासशील देशों के गरीब किसानों और विकसित देशों की धनाढय सरकारों के बीच होती है। यह असमान प्रतियोगिता कई असमानताओं को जन्म देती है। विकसित देशों द्वारा अपने यहां किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी अफ्रीकी देशों की राष्ट्रीय आय से भी अधिक है। इस प्रकार एक तरफ विकसित देश अपने कृषि पदार्थों की कीमतों को कृत्रिम रूप से सस्ता रखकर विकासशील देशों के उत्पादों को अपने यहां पहुंचने से रोकते हैं, वहीं दूसरी तरफ कई अन्य प्रकार की गैर प्रशुल्क बाधाओं के माध्यम से भी विकसित देश अपने घरेलू बाजार को संरक्षित करे हैं। गुणवत्ता नियंत्रण(क्वालिटी कंट्रोल) व स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाले साइनेटरी और फाइटों साइनेटरी आदि प्रतिबंधों के नाम पर भी विकासशील देशों के उत्पादों को विकसित देशों के बाजारों तक पहुंचने से रोका जाता है, जैसे- भारत विश्व में फलों के उत्पादन में दूसरा स्थान रखता है किंतु इन्हीं प्रतिबंधों के कारण विश्व में फलों के व्यापार में भारत का हिस्सा नगण्य है। इसके अतिरिक्त विकसित देश निर्यातों को बढ़ाने के लिये भी सब्सिडी प्रदान करते हैं। एक तरफ विकसित देशों में निर्यात हेतु आधारभूत संरचना विकासशील देशों की तुलना में काफी बेहतर होती है तथा साथ में निर्यात सब्सिडी का अतिरिक्त प्रावधान विकसित देशों के कृषि उत्पादों की कीमतों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में विकासशील देशों के उत्पादों की तुलना में कम रखने में सहायक होता है जिसके परिणामस्वरूप विकसित देशों के किसान अपने सहायता प्राप्त कृषि निर्यात को विकासशील देशों तथा अत्यन्त कम विकसित देशों (एलडीसी) पर लादने में सफल हो जाते हैं जिसके कारण विकासशील और अत्यन्त कम विकसित देशों के किसानों के हितों पर दुष्प्रभाव पड़ता है। साथ ही, विकसित देशों के उत्पाद विकासशील देशों के बाजारों में पहुंचकर एक अन्य समस्या को जन्म देते हैं। सामान्यत: भारत जैसे देश में, जहां कि विदेशी सामान के उपभोग को संपन्न वर्ग द्वारा प्रतिष्ठा का कारण माना जाता है, वहां यह वर्ग आयातित विदेशी सामानों को ही खरीदता है। यद्यपि यह वर्ग, जनसंख्या का एक छोटा हिस्सा ही होता है फिर भी अधिकतम् क्रयशक्ति इसी वर्ग के हाथों में केंद्रित होती है तथा इसके परिणामस्वरूप विकासशील देशों के उत्पादों को अपने ही देश में मांग की कमी का सामना करना पड़ता है।

जहां तक विकसित देशों द्वारा अपने यहां किसानों को भारी मात्रा में दी जा रही सब्सिडी को घटाने का सवाल है, इस मुद्दे पर विकसित देश अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने से कतराते रहे हैं। एक तरफ विकसित देश सब्सिडी की मात्रा में कमी करने से बचते रहते हैं, दूसरी तरफ ये देश अपनी अधिकांश सब्सिडी व्यापार को विरूपित न करने वाले 'ब्लू बाक्स' एवं ग्रीन बाक्स के अंतर्गत देते रहे हैं। इसमें से चंकि 'ग्रीन बाक्स' के अंतर्गत दी जाने वाली सब्सिडी' अधिकतम की सीमा और कम करने की वचनबद्धता दोनों से मुक्त है इसलिये विकसित देश अब सब्सिडी की अधिकांश मात्रा इसी बाक्स के अंतर्गत दे रहे हैं। किंतु यहां सवाल यह उठता है कि क्या बाक्स का रंग बदल देने से सब्सिडी की मात्रा घट जायेगी? यहां जरूरत सब्सिडी को कम करने की है, उसे देने का बहाना बदलने की नहीं।

विश्व व्यापार संगठन की पिछली तीन-चार बैठकों से यह मुद्दा काफी ज्वलंत हो गया है। इस पर विकसित और विकासशील देशों के बीच स्पष्ट विभाजन भी दिखायी देता है। दोनों पक्षों के बीच काफी बहस के बाद हांगकांग सम्मेलन में विकसित देश सन् 2013 तक निर्यात सब्सिडी समाप्त करने पर सहमत हो गये हैं किंतु निर्यात सब्सिडी विकसित देशों द्वारा दी जा रही कुल घरेलू सहायता का मात्र पांचवा हिस्सा ही है। इसलिये

विकासशील देशों की स्थिति में बहुत परिवर्तन नहीं होने वाला है। इसके साथ ही निर्यात सब्सिडी समाप्त करने का लाभ अर्जेंटीना, ब्राजील, चीन जैसे देशों को होगा जिनके यहां कृषि क्षेत्र अधिक कुशल है जिस कारण इन देशों का कृषि क्षेत्र विकसित देशों के कृषि क्षेत्र के साथ प्रतियोगिता कर सका है किंतु भारत को निर्यात सब्सिडी समाप्त होने का कोई विशेष लाभ नहीं होगा क्योंकि यहां कृषि पदार्थों के उत्पादन की लागतें तुलनात्मक रूप से अधिक हैं। हांगकांग सम्मेलन में व्यापार को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली घरेलू सहायता को समाप्त करने के संदर्भ में कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया गया तथा इसे बातचीत के ऊपर छोड़ दिया गया है।

विश्व व्यापार संगठन में दूसरा सर्वाधिक विवादित मुद्दा बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित है जिससे विकासशील देशों में कृषि व औषधि क्षेत्र सर्वाधिक प्रभावित होंगे, नयी पेटेंट व्यवस्था के तहत अब औद्योगिक तकनीक के सभी क्षेत्रों में किसी भी आविष्कार के लिये पेटेंट मिल सकेगा तथा यह पेटेंट उत्पाद एवं प्रक्रिया दोनों पर होगा। पेटेंट, अन्वेषक को पेटेंट वाली वस्तु के संदर्भ में एक निश्चित अवधि के लिये एकाधिकार दिलाता है तथा इस एकाधिकार की स्थिति का लाभ उठाकर पेटेंटधारी मनचाही कीमत वसूल कर सकता है। विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अनुपालन में भारत सरकार ने नया पेटेंट संशोधन अधिनियम पारित कर दिया है जिससे 1 जनवरी 2005 से भारतीय पेटेंट कानून विश्व व्यापार संगठन के पेटेंट कानून के अनुरूप बन गया है। नयी पेटेंट प्रणाली के अनुसार अन्वेषक को अब संबंधित बौद्धिक संपदा पर 20 वर्षों का एकाधिकार होगा जबकि पहले यह अवधि मात्र 5 से 7 वर्ष ही थी। इसके अतिरिक्त अब उत्पाद तथा प्रक्रिया दोनों पर पेटेंट लागू होगा जबकि पूर्ववर्ती भारतीय पेटेंट कानून मात्र प्रक्रिया पेटेंट ही दिलाता था। भारतीय पेटेंट कानून 1970 के अनुसार अंवेषक को मात्र अंवेषित प्रक्रिया पर

तालिका-2

दो प्रमुख दवाइयों की कीमतों का तुलनात्मक विवरण

(कीमतें रुपये में)

दवा	ब्रांड	कम्पनी	भारत	पाकिस्तान	ब्रिटेन	अमेरिका
रेनीटिडीन	जैनटेक 3000 मिग्रा. X10	ग्लेक्सो	29.03	260.40	481.31	744.65
डाइक्लोफिनेक	बोवरान	सीबा गीगी	05.67	55.80	95.84	239.47

एकाधिकार मिला था तथा कोई अन्य कंपनी किसी अन्य प्रक्रिया के माध्यम से उसी उत्पाद को बना सकती थी। इसका सबसे अधिक लाभ भारत के औषधि क्षेत्र को हुआ था जिसने प्रगति के नये आयामों को छूने के साथ-साथ जीवनरक्षक औषधियों की सस्ती उपलब्धता भी सुनिश्चित करायी। मात्र भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के अन्य गरीब विकासशील देशों जैसे-अफ्रीकी देशों में भारतीय औषधि उद्योग ने अत्यंत कम दामों पर एड्स जैसी जानलेवा बीमारियों से लड़ने के लिये जीवन रक्षक दवायें उपलब्ध करायीं। अब नयी पेटेंट प्रणाली के लागू हो जाने से उत्पाद पर भी पेटेंटधारी कंपनी का एकाधिकार होगा तथा कोई अन्य कंपनी इसका उत्पादन अंवेषक कंपनी को रायल्टी भुगतान के बाद ही कर सकेगी। इसके कारण जीवनरक्षक दवाओं के साथ-साथ कई अन्य दवाओं की कीमतों में भारी वृद्धि की आशंका है। तालिका-2 में दो महत्वपूर्ण दवाओं की कीमतों का विवरण दिया हुआ है। भारत में प्रक्रिया पेटेंट के अंतर्गत आने वाली इन दवाओं की कीमतों तथा अन्य देशों में उत्पाद पेटेंट के अंतर्गत इन्हीं दवाओं की कीमतों का भारी अंतर सारी कहानी स्पष्ट कर देता है क्योंकि भारत की तुलना में अन्य देशों में इनकी कीमतें 10 गुने से

भारत जैव-विविधता के मामले में विश्व के सम्पन्नतम् देशों में से एक है तथा भारत का इस संदर्भ में ज्ञान बहुत समृद्ध रहा है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति 'आयुर्वेद' ने अपने आस-पास उपस्थित विधिक प्राकृतिक वस्तुओं के गुणों को पहचान कर उनका उपयोग चिकित्सीय कार्यों में किया है। वर्तमान पेटेंट प्रणाली में बहुराष्ट्रीय कंपनियां चोरी से अथवा कुछ परिवर्तनों द्वारा इन प्राकृतिक वस्तुओं के औषधीय उपयोगों को पेटेंट करा सकती हैं जिससे इन वस्तुओं का सहज उपयोग प्रतिबंधित हो जायेगा। इस खतरे का एक उदाहरण अमेरिका में हल्दी के पारंपरिक प्रयोग तथा नीम के कीटनाशक के रूप में प्रयोग को पेटेंट कराने के प्रयास के रूप में सामने आ चुका है। जिस नीम और हल्दी के विविध औषधीय गुणों को हम भारतीय हजारों वर्षों से जानते आये हैं, अमेरिका में इन्हीं गुणों को नये के रूप में प्रस्तुत कर पेटेंट कराने का प्रयास किया गया जिसे डा. माशेलकर के अथक प्रयासों से निरस्त कराने में सफलता मिली। बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण के नाम पर विकासशील देशों की समृद्ध प्राकृतिक विरासत की चोरी का यह एक उदाहरण था। स्वास्थ्य के क्षेत्र के अतिरिक्त पेटेंट व्यवस्था के दुष्प्रभावों का खतरा कृषि क्षेत्र पर भी मंडरा रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय किसान अपने बीजों का उत्पादन, संरक्षण एवं विनिमय करते आये हैं। भारतीय किसानों ने विभिन्न क्षेत्रों की प्राकृतिक स्थिति के अनुसार बीजों की किस्मों का विकास किया तथा लंबे समय से उनका उपयोग करते आये हैं, जैसे- बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के किसानों ने बाद प्रतिरोधी, सूखा क्षेत्र के किसानों ने सूखा प्रतिरोधी तथा ठण्डे प्रदेशों के किसानों ने शीत प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया। भारतीय किसानों में शिक्षा का स्तर अति निम्न है तथा इस कारण उनमें जागरूकता ज्ञान को बहुराष्ट्रीय कंपनियां छल से स्वयं के नाम से पेटेंट करा सकती हैं तथा किसानों को उनके ही बीजों के उत्पादन, बचत एवं विनिमय से वंचित कर सकती हैं। इस स्थिति में किसान बीजों को इन कंपनियों से ऊंची कीमतों पर खरीदने को बाध्य हो जायेंगे जिसका दुष्प्रभाव किसानों की स्थिति के साथ-साथ खाद्य सुरक्षा पर भी पड़ेगा।

लेकर 42 गुना तक अधिक हैं। अब भारत में भी नयी पेटेंट प्रणाली के अंतर्गत उत्पाद पेटेंट को लागू किये जाने से दवाओं की कीमतों में भारी वृद्धि की आशंका है जिसका निस्संदेह भारत की गरीब व मध्यमवर्गीय जनता के साथ-साथ अन्य विकासशील देशों की जनसंख्या के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। यद्यपि एक वर्ग कीमतों में वृद्धि की आशंका को गलत साबित करता है। इस वर्ग का तर्क है कि अधिकांश जीवन रक्षक दवायें पेटेंट प्रणाली से बाहर हैं तथा नयी पेटेंट प्रणाली को अपनाने से मात्र कुछ दवाओं की कीमतों में वृद्धि होगी। किंतु इस तर्क को बहुत मान्यता नहीं दी जा सकी क्योंकि सामान्यत: अधिकांश जीवन रक्षक दवाओं पर पेटेंट बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास है तथा अधिकतम मुनाफे को ही अपना अंतिम लक्ष्य मानने वाली ये कंपनियां बाजार में दवाओं की कृत्रिम दुर्लभता की स्थिति उत्पन्न कर सकती हैं अथवा वर्तमान दवाइयों को बाजार से वापस लेकर उसके स्थान पर नयी दवाइयों को पेटेंट कराकर बाजार में मनचाही कीमतों पर बेच सकती हैं। इस स्थति में बहुत सी बीमारियों का इलाज गरीब और मध्यम वर्ग की पहुंच से बाहर हो जायेगा तथा भारत व अन्य विकासशील देशों में सार्वजनिक स्वास्थ्य के खतरे उत्पन्न होने लगेंगे।

इस तरह एक तरफ विकसित देश, विकासशील देशों के कृषिगत उत्पादों को अपने बाजारों तक पहुंचने से रोकने के लिये विविध उपाय अपनाते रहते हैं वहीं दूसरी तरफ अपने द्वारा उत्पादित औद्योगिक वस्तुओं की विकासशील देशों की बाजारों में पहुंच सुनिश्चित कराने के लिये स्वतंत्र व्यापार की दुहाई देते रहते हैं। विकसित देश विश्व व्यापार संगठन के गैर-कृषि वस्तुओं के लिये बाजार पहुंच (नामा) प्रावधान के द्वारा विकासशील देशों पर औद्योगिक वस्तुओं के लिये तटकर की दरों में कटौती के लिये दबाव बनाते रहते हैं। यहां इस प्रावधान के निहितार्थ को समझना आवश्यक हो जाता है। यह प्रावधान विकसित देशों द्वारा उत्पादित औद्योगिक वस्तुओं की विकासशील देशों के बाजारों में मुक्त पहुंच सुनिश्चित करता है जो कि विकासशील देशों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालना है। विकासशील देशों में औद्योगिक क्षेत्र बहुत विकसित नहीं होता है तथा पूंजी की कमी, निम्न उपादकता, पिछड़ी प्रौद्योगिकी जैसी कई समस्याओं से ग्रसित होता है। इस स्थिति में विकासशील देशों के औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुएं, विकसित देशों की परिष्कृत औद्योगिक वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाती है तथा विकासशील देशों के औद्योगिक क्षेत्र को मांग की कमी से जूझना पड़ता है। विकासशील देशों में औद्योगिक क्षेत्र कमजोर होता है तथा उसे मजबूत होने क संरक्षण की आवश्यता होती है किंतु विश्व व्यापार संगठन के प्रावधान ऐसा करने से रोकते हैं। इस स्थिति में विकासशील देशों का औद्योगिक क्षेत्र विकसित देशों की औद्योगिक वस्तुओं के आगे टिक नहीं पाता और विकासशील देशों के बाजार पर विकसित देशों की कंपनियों का कब्जा हो जाता है। यह सर्वविदित है कि विकसित होने के लिये विकासशील देशों की राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का योगदान अवश्य बढ़ना चाहिये किंतु 'नामा' का प्रावधान विकासशील देशों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को बाधित करता है। इसके अतिरिक्त विकसित देश श्रम मानकों का बहाना लेकर विकासशील देशों के निर्मित उत्पादों पर रोक लगाते हैं जिसका उद्देश्य विकासशील देशों में विद्यमान निम्न श्रम लागत के प्रभाव को समाप्त करना है। विकासशील देशों को श्रम के क्षेत्र में तुलनात्मक लाभ की स्थिति होती है जिसे विकसित देश समाप्त करना चाहते हैं कि विकासशील देशों की निर्मित वस्तुओं के निर्यात की क्षमता समाप्त हो जाये तथा ये देश मात्र कच्चे खनिजों, प्राथमिक वस्तुओं आदि का निर्यात करते रहें तथा विनिर्मित वस्तुओं का आयात करने के लिये बाध्य हो जायें। यह प्रावधान भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौर की याद दिलाता है जब भारत ब्रिटेन को कच्चे माल का निर्यात करता था तथा ब्रिटेन में निर्मित औद्योगिक वस्तुओं का आयातक था। इस प्रकार से उपरोक्त प्रावधान उपनिवेशवाद का एक नया बहाना विकसित देशों को उपलब्ध कराता है।

इस प्रकार विश्व व्यापार संगठन जो कि विकसित एवं विकासशील देशों को एक समानता का मंच देने के उद्देश्य से गठित किया गया था, विकसित देशों के हितों को साधने का साधनमात्र बनकर रह गया है। संगठन के प्रावधानों के तहत घरेलू बाजार खोलने से भारत का विशाल बाजार विदेशी वस्तुओं से पट गया है। कुछ समय पूर्व तक भारतीय

विश्व व्यापार संगठन के व्यापार संबंधित निवेश उपाय (ट्रिम्स) के प्रावधान विदेशी पूंजी के साथ भेदभाव को रोकते हैं। इस प्रकार से यह प्रावधान विदेशी पूंजी के संबंध में सरकारों को चयनात्मक रूप से कार्य करने की स्वतंत्रता को समाप्त कर देता है और एक प्रकार से आर्थिक प्रभुसत्ता के साथ समझौते की स्थिति उत्पन्न करता है। विकसित देशों में पूंजी की अधिकता होती है तथा ये देश पूंजी का स्वतंत्र प्रवाह चाहे हैं ताकि यह पूंजी विकासशील देशों में विनियोजित होकर लाभ कमा सके। यह पूंजी सामान्यत: पुरानी तकनीक का ही प्रयोग करती है तथा शीघ्र लाभ देने वाली वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार से यह पूंजी विकासशील देशों में विकास को गति देने वाले किसी कार्य में सहायक नहीं होती बल्कि उपयोग प्रक्रिया को बढ़ाकर बचतों को कम करती है जिससे विकासशील देशों में पूंजी निर्माण की दर और भी घट जाती है जिसका दुष्प्रभाव विकासशील देशों की विकास-प्रक्रिया पर पड़ता है। यह पूंजी इन देशों में साधारण उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होती है जिसका कि उत्पादन पहले लघु क्षेत्र व कुटीर क्षेत्र में हो रहा था। इस पूंजी के प्रवेश से लघु एवं कुटीर उद्योगों पर दुष्प्रभाव पड़ता है तथा ये उद्योग बंद हो जाते हैं जिससे इन उद्योगों में लगे श्रमिक बेरोजगारी का दंश झेलने को मजबूर हो जाते हैं। इस संदर्भ में एक उदाहरण साफ्ट ड्रिंक्स के क्षेत्र में देखा जा सकता है। जहां पेप्सी और कोका कोला के आने के बाद सभी घरेलू साफ्ट ड्रिंक्स कंपनियां बंद हो चुकी हैं तथा साफ्ट ड्रिंक्स के नाम पर ये कंपनियां कीटनाशक घोल बेच रही हैं।

कृषि पदार्थों की कीमतें अंतरराष्ट्रीय कीमतों की तुलना में कम थी किंतु विकसित देशों द्वारा दी जा रही भारी सब्सिडी के कारण अंतरराष्ट्रीय कृषि कीमतें, भारत की कृषि कीमतों की तुलना में नीची हो गयी जिस कारण भारतीय कृषकों को निर्यात बढ़ाने में सस्याओं का सामना करना पड़ रहा है तथा कृषि क्षेत्र की इसी प्रकार की कई अन्य समस्याओं की परिणति किसानों की आत्महत्या जैसी दुखद घटनाओं के रूप में परिलक्षित हो रही हैं। लघु एवं कुटीर उद्योगों के बंद होने से बेरोजगारी की समस्या जटिल होती जा रही है। भारत में कृषि क्षेत्र के बाद लघु उद्योग क्षेत्र सबसे बड़ा रोजगार प्रदाता क्षेत्र है। किंतु विश्व व्यापार संगठन के विविध प्रावधान सबसे अधिक इन्हीं दो क्षेत्रों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहे हैं और इन क्षेत्रों में श्रम को विस्थापित कर पूंजी की गहनता को बढ़ा रहे हैं। एक श्रम बहुल देश के लिये पूंजी गहन तकनीक का प्रयोग घातक सिद्ध हो सकता है। क्योंकि इससे बेरोजगारी और कई अन्य सामाजिक समस्याएं जन्म लेती हैं। नयी पेटेंट व्यवस्था के खतरे कृषि और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर मंडरा रहे हैं जिसका प्रतिकूल प्रभाव भारत की दो-तिहाई से अधिक जनसंख्या की आजीविका के साथ-साथ स्वास्थ्य पर भी पड़ना तय है। इससे बचने के लिये नयी पेटेंट प्रणाली से खाद्य, कृषि एवं स्वास्थ्य क्षेत्र को बाहर रखने की आवश्यकता है। अब विश्व व्यापार संगठन को लेकर विकासशील देशों का भ्रम टूटा है तथा ये देश अपने हितों की रक्षा के लिये आवाज उठाने लगे हैं। भारत और ब्राजील विकासशील देशों के प्रतिनिधि के रूप में उभरे हैं तथा इन दोनों देशों ने विकासशील देशों के पक्षों को जोरदार ढंग से रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभायी है। 'दोहा दौर' में विकासशील देशों की सफलता इन्हीं प्रयासों का परिणाम थी। विकसित देशों की अनम्य नीतियों के कारण 'कैनकुन सम्मेलन' विफल हो गया। इसी कैनकुन सम्मेलन में विकासशील देशों का मंच समूह-20 (जी-20) गठित हुआ। हांगकांग सम्मेलन में भी विकासशील देश विकसित देशों से सफल सौदेबाजी करने में सक्षम रहे तथा निर्यात सब्सिडी को समाप्त करा पाने में सफल रहे। इसे विकासशील देशों की एक जीत के रूप में प्रचारित किया जा रहा है यद्यपि यह जीत अधूरी है क्योंकि विकासशील देशों को जितना लाभ मिलने का दावा किया जा रहा है वास्तविकता में स्थिति उतनी बेहतर नहीं है। फिर भी संतोषजनक बात यह है कि अब विकासशील देश जागरूक हो गये हैं तथापि अपने हितों की रक्षा के लिये सचेत हो गये हैं। विश्व व्यापार संगठन के दो-तिहाई से अधिक सदस्य विकासशील देश हैं तथा 'एक देश एक मत' की व्यवस्था वाले विश्व व्यापार संगठन में विकासशील देशों के साथ अब और अधिक धोखाधड़ी नहीं की जा सकती यदि यह देश एकजुट बने रहे।

(लेखक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में शोध छात्र हैं)

सुलगता सिंगुर

विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड/सेज) और जमीन अधिग्रहण के बीच हो रही बहसों के बीच सिंगुर अभियान मीडिया में जब उछला और किसानों के हितों की देखभाल के लिए अनशन तक आयोजित किए गए। निम्न अध्ययन वर्ग को कार मुहैया कराने के लिए कारखाना लगाने का विचार किया गया। उद्योगपति टाटा को पश्चिम बंगाल की सिंगुर नामक जगह पसंद आई। तीन दशकों से मार्क्सवादियों द्वारा शासित पश्चिम बंगाल की सरकार ने टाटा को तकरीबन एक हजार एकड़ जमीन देने का अनुबंध किया। राज्य में औद्योगीकरण को आकर्षित करने के लिए पश्चिम बंगाल कुछ महीनों पहले भी चर्चा में आया था जब यहां के मुख्यमंत्री इंडोनेशिया के मुस्लिम समूह रियायतें देने के मामले में विवादों में पड़े थे।

सिंगुर में जमीन देने के सरकार के फैसले के खिलाफ तृणमूल कांग्रेस या सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर ही नहीं लामबंद हुए, सिंगुर राष्ट्रीय जमीन रक्षा कमेटी भी बनाई गई। गौर करने वाली बात है कि सिंगुर पश्चिम बंगाल का तुलनात्मक रूप से उपजाऊ क्षेत्र है और किसान यहां की ज्यादातर जमीन पर चार फसल तक उगा लेते हैं। सरकार ने किसानों की जमीन के बदले मुआवजा देने और रोजगार मुहैया कराने की बात भी कही। लेकिन टाटा उद्योग की तरफ से कहा गया कि स्थानीय लोगों को सिंगुर में लगाए जा रहे उद्योग में नौकरी देना संभव नहीं होगा। जहां तक भूमि सुधारों की बात है तो करीब तीन दशक पूर्व वामपंथियों के शासन में आने से पहले भूमि सुधार तो हो चुके थे लेकिन वामपंथियों ने तकरीबन पंद्रह लाख बटाईदारों को पंजीकृत करवाकर खेती की जमीन में उनके स्थायी अधिकार बनाए। अब राज्य के कानून के अनुसार खेती की जमीन में बटाईदारों की भी हिस्सेदारी होती है। इसी तरह पंचायती राज व्यवस्था लागू करवाना भी वामपंथियों की एक बड़ी उपलब्धि रही। लेकिन सिंगुर मामले ने काफी तूल पकड़ा। यह भी सच है कि सिंगुर में जमीन अधिग्रहण का विरोध स्थानीय स्तर पर उतना नहीं है जितना राजनीतिक स्तर पर। किसानों ने तो यहां तक कह दिया है कि वो जमीन के एवज में दिए गए मुआवजे से पूरी तौर पर संतुष्ट हैं। लेकिन किसानों के कल्याण के लिए अभी और विचार-विमर्श की गुंजाइश बनी हुई है।

विश्व व्यापार संगठन भारतीय कृषि के समक्ष चुनौतियां

अशोक कुमार सिंह

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की लगभग 65 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का अंशदान लगभग 22 प्रतिशत तथा कुल निर्यात में 15.2 प्रतिशत है। जहां विश्व में औसतन 11 प्रतिशत भूमि कृषि योग्य है, वहीं भारत में कुल भूमि का 52 प्रतिशत हिस्सा कृषि योग्य है। विविधता की दृष्टि से भारत बेजोड़ है तथा विश्व के सभी 15 जलवायु यहां विद्यमान हैं। विश्व में पाई जाने वाली 60 प्रकार की मृदाओं में से लगभग 46 प्रकार की मृदा भारत में मौजूद है। इतनी सारी विविधता व क्षमता होते हुए भी देश का किसान खुशहाल नहीं है। देश के आधे से ज्यादा किसान गरीबी रेखा के नीचे जीने को मजबूर हैं। गांवों में शहरों की ओर पलायन जारी है। खेतीहर मजदूरों की दशा दयनीय है। सूखे व बाढ़ की आपदा से ग्रस्त किसान व खेतीहर मजदूर भुखमरी के कगार पर आ जाते हैं, कर्जों की अदायगी के दबाव में आत्महत्या की घटनायें बढ़ती जा रही हैं। हाल के वर्षों में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा केरल के किसानों द्वारा की गयी आत्महत्या की घटनाओं राज्य सरकारों व केंद्र सरकार को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है।

वर्ष 1991 में देश में आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की प्रक्रिया प्रारंभ की गयी थी जिससे कृषि क्षेत्र में पर्याप्त सुधार लाया जा सके, उस समय कृषि उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय कीमतें घरेलू बाजारों में बहुत अधिक थी। इसे आधार मानकर यह सोचा गया था कि विश्व व्यापार समझौते के अस्तित्व में आने के बाद कृषि उत्पादों को विदेशों में बेचने का भारत को स्वर्णिम अवसर मिलेगा और कृषि निर्यात बढ़ने से भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित होगी। भारतीय विशेषज्ञों ने विश्व व्यापार समझौते का इस आधार पर विरोध किया था कि देशी बाजारों में सस्ते विदेशी कृषि उत्पादों की अधिकता होने से भारतीय किसानों को भारी मात्रा में आर्थिक नुकसान होगा तथा बीज उद्योग बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में सिमट जाएगा, किंतु उस समय उदारीकरण के पक्ष में होने के कारण विरोध को नजरअंदाज कर दिया गया और भारत में भी विश्व व्यापार समझौता 1 जनवरी 1995 से लागू हो गया। इस समझौते को लागू हुए एक दशक से ज्यादा समय बीत चुका है, अब हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि इस समझौते का हमारी खेती-बाड़ी पर क्या प्रभाव पड़ा है, तथा इसी के साथ हमें यह भी जानना आवश्यक है कि इसमें जो समझौते हुए हैं उनके प्रभावी होने से हमारी कृषि का स्वरूप क्या होगा और इसमें क्या-क्या परिवर्तन होने की संभावनाएं हैं? गत वर्षों का मूल्यांकन करने से स्पष्ट होता है समझौते का असर कृषि उत्पादों से बाजार प्रवेश विपणन और उपभोक्ताओं की मांग पर असर पड़ा है, किंतु भारत जैसे विकासशील देश अभी तक इसके लाभों से वंचित है, इसका मुख्य कारण है पूंजीवादी एवं औद्योगिक देशों में अब भी अपनी कृषि उत्पादों पर सब्सिडी एवं घरेलू सहायता में कोई कटौती नहीं की है जबकि विश्व व्यापार समझौते की शर्त के अनुसार विकसित देशों को समझौता लागू होने के 7 वर्ष के अंदर सब्सिडी की मात्रा में 21 प्रतिशत और निर्यात सब्सिडी में बजटीय प्रावधानों में 24 प्रतिशत की कटौती 10 वर्षों की अवधि में की जानी थी। यदि हम कुछ विकसित देशों का उदाहरण लें तो जापान में कृषि उत्पादों के कुल मूल्यों का 82.5 प्रतिशत, दक्षिण कोरिया में 62 प्रतिशत, यूरोपियन देशों में 35 प्रतिशत, चीन में 34 प्रतिशत और अमरीका में 28 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है जबकि भारत में यह अनुदान मात्र 2.34 प्रतिशत है। इसके बावजूद विकसित देशों ने सब्सिडी को लेकर उलझाव पैदा कर रखा है और सीधे इस शब्द का प्रयोग न कर के वैकल्पिक शब्दों का प्रयोग करते हैं यानी निर्यात सब्सिडी या वित्तीय सहायता, उल्लेखनीय है कि अमरीका और यूरोपीय संघ के सदस्य देश अपने किसानों को खेती के लिए बीज, पानी और बिजली में सब्सिडी नहीं देते, बल्कि किसान को प्रत्यक्ष सब्सिडी देते हैं जो तकनीकी रूप से 'निर्यात सब्सिडी' कही जाती है। विकसित देश यहां तर्क देते हैं कि वे अपने किसानों को खेती करने के लिए सब्सिडी नहीं देते - बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपने उत्पादों को तर्कसंगत मूल्य पर बेचने के लिए वित्तीय सहायता देते हैं। इस शब्द जाल के ताने-बाने के माध्यम से विकसित देश अपने किसानों को अधिक से अधिक वित्तीय सहायता देने में सफल हो जाते हैं। अगर आंकड़ों को देखा जाय तो इस सच्चाई की तस्वीर बिल्कुल साफ नजर आयेगी। भारत में प्रति किसान मात्र 111 डालर की सब्सिडी दी जाती है जबकि अमेरिका में यह प्रति किसान 47000 डालर है। यूरोपीय संघ अपने प्रत्येक किसान को लगभग 34000 डालर सब्सिडी देता है। इसका प्रभाव यह पड़ रहा है कि विकासशील देशों के किसानों को संपन्न देशों की कृषि सब्सिडी और संरक्षणवाद से काफी नुकसान हो रहा है। इसका मूल कारण कृषि उत्पादों के आयात में कई गुना की वृद्धि है, जिसके फलस्वरूप विकासशील देशों के लाखों किसान अपनी जीविका गंवा बैठे हैं। भारत के संदर्भ में यह स्थिति निम्नलिखित आंकड़ों के माध्यम से स्पष्ट की जा सकती है। वर्ष 1996-97 से 2004-2005 तक के आयात में मात्रा के लिहाज से 270 प्रतिशत और कीमत के लिहाज से 300 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुयी है। कृषि

आधारित किसी भी अर्थव्यवस्था में खाद्य सामग्री के आयात का मतलब है बेरोजगारी का आयात करना।

कृषि का अर्थ विभिन्न देशों के लिए भिन्न-भिन्न है। भारतीय किसानों के लिए कृषि का अर्थ है जीवन-निर्वाह। जबकि विकसित देशों में किसानों की चिंता भारी मात्रा में सब्सिडी प्राप्त कृषि व्यवस्था में अपनी आमदनी की सुरक्षा करने को लेकर है।

नई दिल्ली में आयोजित आर्थिक संपादकों के सम्मेलन में कृषि पर प्रस्तुत पृष्ठभूमि के दस्तावेज में बताया गया कि - भारत जैसे देश में कृषि कितना अहम है जहां अब यह राष्ट्रीय आय का मुख्य स्रोत नहीं रह गया है। कृषि भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में मात्र 22 प्रतिशत का ही योगदान करता है। जबकि उद्योग के लिए यह प्रतिशत करीब 27 प्रतिशत है और सेवा क्षेत्र का 50 प्रतिशत से भी अधिक। खेतों की उपज भारतीय निर्यात में 14 प्रतिशत से अधिक योगदान नहीं देती। लेकिन कृषि क्षेत्र देश के 57 प्रतिशत से अधिक सक्षम पुरुषों एवं महिलाओं को रोजगार देता है। भारत में रहने वाले 65 करोड़ से अधिक लोगों को, आजीविका सुरक्षा मुहैया कराता है। दूसरे शब्दों में 65 प्रतिशत भारतीय अपने प्रतिदिन की रोटी के लिए खेती पर निर्भर हैं।

विकसित देशों में किसानों की चिंता भारी मात्रा में सब्सिडी प्राप्त कृषि व्यवस्था में अपनी आमदनी की सुरक्षा करने को लेकर है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है।

विश्व व्यापार संगठन के आंकड़े बताते हैं कि 2005 में कृषि उत्पादों का वैश्विक व्यापार 783 अरब डालर के बराबर का था, जिसमें से केवल यूरोपीय संघ से ही 344.52 अरब डालर के बराबर या 44 प्रतिशत का निर्यात हुआ था। कृषि उत्पादों में यूरोप व्यापार का अधिकांश हिस्सा यूरोप के भीतर ही है लेकिन विकसित देश चाहते हैं कि वे विश्व के अन्य हिस्सों के बाजार में भी अपनी पहुंच सुलभ करा सके।

अमरीका विश्व के कृषि उत्पादों का दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक है, जिसने 2005 में 79.57 अरब डालर के मूल्य के कृषि उत्पादों का निर्यात किया, जो वैश्विक निर्यातों के 10 प्रतिशत के बराबर है। कनाडा, ब्राजील, चीन, आस्ट्रेलिया आदि कृषि उत्पादों के बड़े निर्यातक हैं, लेकिन वैश्विक निर्यात में उनका हिस्सा 5 प्रतिशत से भी कम है।

भारतीय निर्यात 2005 में 8.96 अरब डालर का रहा और यह विश्व के कुल निर्यात का केवल एक प्रतिशत था।

यूरोपीय संघ और अमेरिका कृषि उत्पादों के विश्व के बड़े निर्यातक देशों में भी हैं (उदाहरण के कैरबियाई देशों से केले, भारत एवं पाकिस्तान से चावल तथा भारत, चीन व श्रीलंका से चाय) यूरोपीय संघ विश्व के कृषि उत्पादों के 44 प्रतिशत का उपभोग भी करता है और अमेरिका का कृषि उत्पाद विश्व के कुल व्यापार का 10.5 प्रतिशत है।

प्रमुख कृषि निर्यातक	2005 में निर्यात अरब डालर में	बाजार में हिस्सा
यूरोपीय संघ	344.52	44%
अमेरिका	79.57	10%
कनाडा	40.10	5%
ब्राजील	30.85	3.9%
चीन	24.12	1.5%
आस्ट्रेलिया	22.12	2.8%

स्रोत : डब्ल्यूटीओ आंकड़े

भारतीय कृषि के समक्ष चुनौतियां

एक आशा लगायी गयी थी कि उदारीकरण से वैसे ही संरक्षणवाद की दीवारें ध्वस्त हो जायेगी वैसे ही विदेशी मुद्रा का अबाध प्रवाह प्रारंभ होगा और हम सभी मालामाल हो जाएंगें, लेकिन यह आशा अवास्तविक साबित हुयी। इसके बावजूद उदारता का मूलमंत्र जिंदा है तो इसलिए कि इसकी पैरवी विकसित देश कर रहे हैं।

विकासशील एवं अल्पविकसित देशों को इस खूबसूरत स्वप्न में उलझाकर शुल्कों में कमी करने, मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटाने और सब्सिडी को धीरे-धीरे समाप्त करने के लिए बाध्य किया जा रहा है।

अंकटाड की वीना झा के अनुसार यदि विकसित देश अपने देश में किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी में वास्तविक कटौती करते हैं तो भी इससे सभी विकासशील देश विकसित देशों के बाजार का लाभ नहीं उठा पाएंगे। इसके बावजूद उनको अपनी खेती, किसानों और खाद्य की सुरक्षा बनी रहेगी। आज वैश्वीकरण के युग में कृषि को राष्ट्र के विकास का मूलाधार बनाना और भी आवश्यक हो गया है। कृषि के ही आधार से किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को वह शक्ति प्राप्त होती है जो उसे विश्व बाजार में खड़े होने के लिए सामर्थ्यवान बनाती है। चीन ने इस बात को समझाते हुए अपनी अर्थव्यवस्था को वैश्वीकरण के लिए खोलने से पहले अपनी कृषि को कई गुना बढ़ाया। चीन में प्रति हेक्टेयर अनाज का उत्पादन लगभग 5 टन है, जबकि हमारे भारत में यह उत्पादन 2.5 टन से भी कम है। हमारे यहां कृषि जितनी खराब हालत में है, उससे ज्यादा खराब हालत किसानों की है। किसानों की उपज का बाजार में लाभकारी मूल्य पर बिक नहीं पाना आज की भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या है। इस समस्या का समाधान हमारी सरकार को खोजना है।

किसानों को इस तरह की समस्याओं से निजात दिलाने का एक उपाय सब्सिडी है, लेकिन सरकारी खर्चे को कम करने के लिए इस सब्सिडी में ही पिछले कई वर्षों से कटौती की गयी है। अब किसानों की समस्याओं के हल के लिए कृषि सब्सिडी ने भी अपनी उपयोगिता खो दी है क्योंकि इसका बहुत बड़ा भाग बिचौलियों द्वारा हड़प लिया जाता है अथवा भ्रष्ट मशीनरी के पेट में चला जाता है। आर्थिक सुधार कार्यक्रमों का लाभ किसानों को कैसे पहुंचाया जाए, यह एक बहुत बड़ी चुनौती है जिसकी ओर हमारी नीति-निर्माताओं ने कोई ध्यान नहीं दिया है। खाद, बीज, कीटनाशक, पानी, बिजली और कृषि उपकरणों के मूल्य लगातार बढ़ते जा रहे हैं। किसानों की सबसे बड़ी समस्या यही है कि कृषि की लागत बढ़ गयी है और जिंसों की कीमत घट गयी है। आज किसान को अपनी फसल का लागत मूल्य निकाल पाना भी मुश्किल हो गया है। लागत के मुकाबले समर्थन मूल्य में की गयी वृद्धि बहुत कम है। गांवों में मजदूर, छोटे किसान, कृषि क्षेत्र और हथकरघा उद्योग जैसे अर्थ-व्यवस्था के बहुत ही महत्वपूर्ण अंग बजट के दायरे में नहीं आते।

आर्थिक सुधार की नई नीतियों का हमारी खेती और गरीब किसानों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने वाली संस्था का कहना है कि जब तक कृषि मंडियों और मंडी परिषदों में छोटे किसानों और खेतीहर महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाएगी तब तक कृषि सुधारों का लाभ गरीबों को नहीं मिलेगा। इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय व्यापार मानदण्डों के अनुरूप हम अपने कृषि उत्पादों को सुधार पायेगें। यह भी एक समस्या है। उत्पादों की गुणवत्ता हम पिछले 58 वर्षों में नहीं सुधार पाये तो आगामी कुछ ही वर्षों में हम अपनी गुणवत्ता

सुधार पायेंगे। हमारे यहां कृषि उत्पादों की लागत बढ़ रही हैं जबकि अंतरराष्ट्रीय बाजार में कृषि उत्पादों की कीमतें निरंतर घट रही हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि विश्व व्यापार संधि के अनुसार भारत में भरपूर खाद्यान पैदा करने के पश्चात् भी एक निश्चित मात्रा में अनाज विदेशों से आयात करना पड़ेगा, ऐसा करने से निश्चय ही घरेलू कृषि उत्पादों की कीमतें लागत मूल्य से कई गुना नीची हो जाएंगी, इसके अलावा विश्व व्यापार संगठन के पूंजीवादी सदस्य देश भारत पर अनुदान कम करने हेतु लगातार दबाव डाल रहे हैं। जबकि भारत में दिया जाने वाला अनुदान विकसित देशों की तुलना में नगण्य है। भारत यदि व्यापार शुल्क लगाता है तो पूंजीवादी देश अधिक अनुदान देकर अपनी कृषि-वस्तुओं की कीमतें कम कर देते हैं, ऐसे में भारत का व्यापार उनके व्यापार के सामने टिक पाना संभव दिखाई नहीं देता है, इससे भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था एवं कृषि नीति ढांचे के विपरीत बदलाव आने की व्यापक संभावना स्वाभाविक है, मुक्त व्यापार शैली भारत के लिए घातक भी है और लाभकारी भी। इस प्रणाली का उपयोग भारत यदि आयात की सुविधा के तौर पर करता है तो इससे हमारी कृषि के विनाश का रास्ता खुलेगा और हम अपने हाथों ही विनाश कर लेगें, इसके विपरीत इस प्रणाली का निर्यात के तौर पर उपयोग करने से भारत के समृद्धि के द्वार खुलेंगे, तथा देश समृद्धशाली बनेगा।

विश्व व्यापार संगठन की हांगकांग वार्ता की उपलब्धि - विश्व व्यापार संगठन की हांगकांग मंत्रिस्तरीय वार्ता में विश्व उत्पाद तथा विशेष सुरक्षा प्रणाली पर सहमति कायम करवाना भारत की एक बड़ी उपलब्धि रही। इससे देश के किसानों के हितों की पूरी तरह सुरक्षा की जा सकेगी। भारत और विकासशील देशों ने व्यापार वार्ता में बड़ी मेहनत की थी। लोकसभा में अपने वक्तव्य में श्री कमलनाथ ने कहा कि विकासशील देश खाद्य सुरक्षा, जीवनयापन सुरक्षा और ग्रामीण विकास के मानकों पर आधारित संकेतकों के जरिए विशेष उत्पादों के रूप में पर्याप्त संख्या में शुल्क श्रृखलाएं निर्धारित कर सकेंगे। आयात बढ़ाने या अंतरराष्ट्रीय कीमतों में गिरावट से अपने किसानों को सुरक्षित रखने के लिए विकासशील देश विशेष सुरक्षा उपाय करेंगे। उन्होंने विश्वास दिलाया कि अंतरराष्ट्रीय पटल पर सरकार प्रत्येक क्षेत्र के विभिन्न हितधारकों के साथ निकट संपर्क बनाये रखेगी ताकि बेहतर परिणाम हासिल किये जा सके, किसानों और उद्योगों के हितों की पूरी तरह संरक्षित किया जा सके और राष्ट्रीय हितों का संवर्धन किया जा सके। उन्होंने कहा कि भारत और विकासशील देशों की मोर्चाबन्दी कामयाब दिखी, जिसके चलते विकसित देशों ने पहली बार अपने यहां कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सरकारी सहायताओं और सब्सिडी खत्म करने के व्यापक प्रस्ताव पर राजी करना पड़ा और कृषि पर निर्यात सब्सिडी 2013 तक समाप्त करने का वादा करना पड़ा। श्री कमलनाथ ने कहा कि कृषि क्षेत्र के विकास से संबंधित सभी योजनाओं को विश्व व्यापार संगठन के नियमों की परिधि से बाहर रखा गया है। उन्होंने विशेष उत्पाद के प्रावधान के बारे में कहा कि इस समझौते में यह सुनिश्चत कर लिया गया है कि विकासशील देश अपने-अपने कृषि क्षेत्र की संवेदनशीलता के आधार पर कतिपय विशेष फसलों को आयात कर की कटौती से सुरक्षित रख सकेंगे। उन्होंने कहा कि इन विशेष फसलों का निर्धारण हम स्वयं कर सकेंगे, इसमें कोई बाहरी हस्तक्षेप नहीं होगा।

विश्व व्यापार समझौते में सुधार हेतु सुझाव - अंतरराष्ट्रीय बाजार में कीमतों में होने वाले परिवर्तनों से किसानों पर पड़ने वाले असर को रोकने के लिए विकासशील देशों को अलग से सुरक्षात्मक व्यवस्था की मांग करनी चाहिए।

सरकार को अपने कृषि उत्पादों पर राज्य सहायता राशि बढ़ाने पर विचार करना चाहिए, जो सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 2.34 प्रतिशत है। समझौते के अनुसार इसे 10 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

गरीबी उन्मूलन-ग्रामीण विकास और कृषि प्रसार जैसे मुद्दों को किसी भी कटौती संबंधी वायदों से बाहर रखना चाहिए।

कृषि से संबंधित विभागों को नवीनतम तकनीकी को उपलब्ध कराया जाना चाहिए ताकि किसानों तक जानकारी सही रूप से पहुंच सके।

समझौते के अनुच्छेद-5 में दिए गये विशेष व्यवहार संबंधी प्रावधानों से कुछ देशों को ही लाभ मिलता है। अत: इस प्रावधान को समाप्त किया जाना चाहिए।

अपनी कृषि के बचाव हेतु भारत को आयात होने वाले कृषि उत्पादों पर संरक्षणात्मक तटीय शुल्क लगाने होंगे। वर्ष 2001 से जिन 1429 उत्पादों से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाया गया है उनमें से 864 उत्पादों पर भारत जितना चाहे तटीय शुल्क लगा सकता है। इनमें 200 से अधिक उत्पाद कृषि से संबंधित है।

भारत को ग्रीनबाक्स (अनुसंधान क्षेत्र, आधार संरचना, और खाद्य सुरक्षा) के अंर्तगत किसी फसल के पैदावार विश्व में औसत स्तर से कम होने पर उस फसल पर सब्सिडी देने की इजाजत लेनी चाहिए।

सब्सिडी कटौती संबंधी कमिटमेंट में निर्यात ऋण, गारंटी तथा बीमा कार्यक्रमों को शामिल नहीं किये जाने से विकसित देश इन्हें लागू कर रहे हैं। जो वास्तव में निर्यात सब्सिडी के ही मुख्य अंश हैं, अत: इन्हें प्रतिबंधित करना चाहिए।

निष्कर्ष

आज के वैश्विक परिवेश में यदि हम विकास करना चाहते हैं तो निश्चित तौर पर हमें नियंत्रणों को कम करना होगा ताकि निर्बाध रूप से वस्तुओं का आदान-प्रदान संपूर्ण विश्व में हो सके लेकिन इसके लिए हमें अपनी कृषि उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाना, उत्पादन लागत घटाकर बिक्री मूल्य कम करना और अंतरराष्ट्रीय बाजारों की मांग के अनुसार कृषि उत्पादन करने की आवश्यकता होगी। भारत सरकार को चाहिए कि वो कृषि क्षेत्र को भरपूर प्राथमिकता दें, ताकि कृषि में पूंजी निवेश हो सके। आगे आने वाले वर्षों में भारत को चीन की तरह कठिन होमवर्क करने की आवश्यकता है, ताकि अपना देश विश्व व्यापार के लिए तैयार हो सके क्योंकि विश्व की मंडी में अपने को बनाये रखना एक चुनौती है।

भारत को कृषि अनुसंधान पर भी अपना व्यय बढ़ाना होगा। भारत में सकल घरेलू उत्पाद का 0.5 प्रतिशत कृषि अनुसंधान पर खर्च होता है, जबकि अमेरिका व इंग्लैण्ड में यह 3 प्रतिशत व आस्ट्रेलिया में 4 प्रतिशत है। भारत को विश्व व्यापार संगठन की शर्तों को बारिकी से समझना होगा। इन सब समझौतों और नियमों के अनुरूप ही हमको तय करना होगा कि हम दूसरे देशों को उनके उत्पादों को भारत में बेचने और बाजार देने की सुविधाएं किस रूप में प्रदान करें ताकि हमारे देश के किसान खुशहाल रहें और विकसित देशों की कूटनीति से हम बचे रहे। इस संबंध में प्रमुख अर्थशास्त्री पी.आर. ब्रह्मानंद का कहना है कि - "हमें अपने देश के हितों को सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। यदि हमें किसानों के हितों के लिए विश्व व्यापार संगठन को छोड़ना भी पड़े तो मैं इसे अनुचित नहीं समझता।"

(लेखक हरिशचन्द्र पी.जी. कालेज, वाराणसी में वरिष्ठ प्रवक्ता है)

नेशनल शेडयूल्ड ट्राइब्स फाइनांस एंड डेवलपमेंट कारपोरेशन (एनएसटीएफडीसी)

नेशनल शेडयूल्ड ट्राइब्स फाइनांस एंड डेवलपमेंट कारपोरेशन (एनएसटीएफडीसी) की स्थापना अप्रैल,2001 में जनजातीय कार्य मंत्रालय के अधीन सरकारी कंपनी के रूप में कंपनी अधिनियम,1956 की धारा 25 के अधीन लाभ निरपेक्ष कंपनी के रूप में हुई । यह अनुसूचित जनजातियों को रियायती आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने वाला एक शीर्ष संस्थान है ।

लाभार्थी के लिए पात्रता मानदंड

i) लाभार्थी को अनुसूचित जनजाति समुदाय का होना चाहिए ।

ii) लाभार्थी की वार्षिक पारिवारिक आय गरीबी रेखा से दुगुनी आय सीमा से अधिक नहीं होनी चाहिए (वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 39,500/-रुपए प्रतिवर्ष तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 54,500/-रुपए प्रतिवर्ष) ।

योजनाएं

i) **मियादी ऋण**- राज्य की चैनेलाइजिंग एजेंसियों के माध्यम से 10 लाख रुपए प्रति यूनिट /लाभ केन्द्र लागत वाली आय सृजक योजना(ओं) परियोजना(ओं) के लिए वित्त प्रदान करता है ।

ii) **कार्यपूंजी ऋण**- एनएसटीएफडीसी कृषि विपणन गतिविधियों/लघु वन उत्पादों और आदिवासी उत्पादनों के समर्थन में राज्य सरकारी एजेंसियों/सरकारी संस्थानों/राष्ट्रीय स्तर के परिसंघों के माध्यम से कार्यपूंजी ऋण उपलब्ध कराता है ।

iii) **पूरक ऋण**- यह ऋण योजनाओं/परियोजनाओं के लिए उपलब्ध सबसिडी/पूंजी प्रोत्साहन आदि की निधि आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रदान किया जाता है ।

iv) **जनजाति** आदिवासी महिला सशक्तिकरण योजना- इसके अंतर्गत अनुसूचित जनजाति की महिला लाभार्थियों के विकास के लिए 50,000/-रुपए प्रति एकक तक की लागत वाली योजना(ओं)/परियोजना(ओं) के लिए अनन्य रूप से रियायती वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है ।

v) **स्व सहायता समूह (एसएचजी)**-यह स्व-सहायता समूहों को ऋण प्रदान करने वाली हाल ही में शुरू हुई एक विशेष योजना है , जिसके अंतर्गत 25 लाख रुपए प्रति स्व सहायता समूह तक की लागत वाली योजना(ओं)/ परियोजना(ओं) की लागत का 90% तक की वित्तीय सहायता दी जाती है ।

vi) **कौशल एवं उद्यमीय विकास कार्यक्रमों के लिए अनुदान**- रोजगार/स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न करने हेतु कौशल एवं उद्यमशीलता विकास कार्यक्रमों के प्रशिक्षण पर आवर्ती लागत का 100% अनुदान दिया जाता है ।

अधिक जानकारी हेतु निम्न पते पर लिखें/सम्पर्क करें

नेशनल शेडयूल्ड ट्राइब्स फाइनांस एंड डवलपमेंट कारपोरेशन

एनबीसीसी टावर, पांचवी मंजिल,15 भीकाजी कामा प्लेस,नई दिल्ली-110 066

टेलीफोन नं.26712562,26712539,26712587,फैक्स नं.26712574

वेवसाईटःwww.nstfdc.nic.in

ईमेलःnstfdc@bol.net.in

आंचलिक कार्यालय

एनएसटीएफडीसी,103/79,मीरा मार्ग,मानसरोवर,**जयपुर-302 020, दूरभाषः 0141-2780203**

एनएसटीएफडीसी,आरसीसी बिल्डिंग,प्रथम तल,(पुल के पास)हेंगराबडी रोड़,दिसपुर,**गुवाहाटी-781 005**

दूरभाषः 0361-2595011

एनएसटीएफडीसी,चौथा तल, तेलुगु समक्षेमा भवन, मासब टेंक,**हैदराबाद-500 028**

दूरभाषः 040-23396088

एनएसटीएफडीसी,दूसरा तल, राजीव गांधी भवन परिसर-2, 35-श्यामला हिल्स, **भोपाल**-462 002

दूरभाषः 0755-2660456

एनएसटीएफडीसी,प्लॉट नं.396, प्रथम तल, गैराज चाक, राजारानी नगर,ओलड टाउन,**भुवनेश्वर**-751 002

दूरभाषः 0674-2342132

KH-01/07/03

विश्व व्यापार संगठन और भारतीय कृषि

अनीता मोदी

विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य वैश्वीकरण व उदारीकरण के माध्यम से राष्ट्र की अर्थव्यवस्थाओं को एकीकृत व समन्वित करते हुए पूरी दुनिया को व्यापार के समान नियमों में बांधना है ताकि 2015 तक दुनिया भर के गरीबों की संख्या अब की अपेक्षा आधी रह जाये। विश्व व्यापार संगठन के तहत किये गये समझौते, वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रक्रियाएं भारत के संपूर्ण ग्रामीण क्षेत्र को प्रभावित कर रही है- जिसका विश्लेषण आवश्यक है क्योंकि ''हमारे गांव मानव शरीर की कोशिकाओं की तरह है। जब सब कोशिकाएं स्वस्थ होगी, तभी शरीर स्वस्थ रह सकेगा।'' इस पत्र का उद्देश्य विश्व व्यापार संगठन के तहत किये गये समझौतों, वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीतियों का प्रभाव भारतीय कृषि क्षेत्र व ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर विश्लेषित करना है।

"कृषि भारत की आत्मा है।" आज भी यह कथन निर्विवाद सत्य है। भारत में लगभग 65 करोड़ किसान कृषि से ही अपना जीवन यापन करते हैं। कृषि या राष्ट्रीय आय में योगदान 22 प्रतिशत के लगभग है। यही नहीं, ग्रामीण रोजगार में 73 प्रतिशत हिस्सा कृषि का है। अत: कृषि के विकास पर ही ग्रामीण रोजगार संवर्धन व गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की सफलता निर्भर है।

विश्व व्यापार संगठन के आगमन के साथ ही भारतीय कृषि अनेक समस्याओं से घिर गई है। विकसित देशों द्वारा विश्व व्यापार संगठन के तहत ऐसे समझौते किए और कराये जा रहे हैं जिससे न केवल विकासशील देशों की संप्रभुता को खतरा है बल्कि उनकी विकास प्रक्रिया पर भी खतरे के बादल मंडरा रहे हैं, उनके विकास के द्वार बंद हो जाने की आशंका है। भारत में अस्सी के दशक की अपेक्षा नब्बे के दशक में खाद्यान्न व अन्य फसलों के उत्पादन व उत्पादकता दर में गिरावट आई है। अस्सी के दशक में खाद्यान्न की उत्पादकता दर 2.8 प्रतिशत थी जो कि कम होकर नब्बे के दशक में 1.98 प्रतिशत रह गई है जो कि जनसंख्या वृद्धि दर से भी कम है। इसी भांति, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है, कृषि की विकास दर आठवीं पंचवर्षीय योजना में 4.7 प्रतिशत थी जो कम होकर नवीं योजना में 2.1 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2002-03 में कृषि की विकास दर ऋणात्मक-7 प्रतिशत रही। 2004-05 में कृषि विकास दर 1.1 प्रतिशत रही है जो सकल घरेलू उत्पादन की विकास दर 6.9 प्रतिशत से काफी कम है। दसवीं पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा के लिए आयोजित राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने कृषि क्षेत्र की विकास दर में गिरावट पर चिंता अभिव्यक्त करते हुये कहा कि किसानों व ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों को विकास का लाभ नहीं मिल पा रहा हैं। कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य के बावजूद दसवीं योजना के पहले तीन वर्षों में उपलब्धि संभवत: 1.5 प्रतिशत से ज्यादा नहीं हो पायेगी। इसी भांति कुल निर्यातों में कृषिगत व सहायक पदार्थों का अंश 1980-81 में 33.5 प्रतिशत था जो घटकर 2000-01 में 13.5 प्रतिशत व 2001-02 में 13.4 प्रतिशत रह गया।

विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के अनुरूप ही भारतीय बाजार के कपाट विदेशी कृषि उत्पादों के लिए खोल दिये गये हैं। उच्च लागत व उच्च कीमत के कारण हमारे स्वदेशी उत्पाद विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के सामने टिक नहीं पा रहे हैं। दूसरी तरफ, विकसित देश अपनी खेती की पैदावार व निर्यातों को बढ़ाकर हमारे जैसे कृषि प्रधान देशों में बेचना चाहे हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विकसित देशों द्वारा अपने किसानों व कृषि उत्पादों से विभिन्न उत्पाद बनाने वाली कंपनियों को अनुदान उपलब्ध कराया जा रहा है। ज्ञातव्य है कि अमेरिका व यूरोपीय देश अपने यहां के किसानों को प्रतिदिन एक अरब डालर की सब्सिडी देते हैं जिससे उनका कृषि उत्पादन विकासशील देशों की तुलना में सस्ता हो जाता है। यदि इस अनुदान को बंद कर दिया जाय तो विकसित देशों की कृषि उत्पादन विकासशील देशों की

कृषि और सकल घरेलू उत्पाद की औसत वार्षिक विकास दर
(प्रतिशत में)

पंचवर्षीय योजना	कृषि विकास दर	सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर
सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)	2.3	6.0
वार्षिक योजना (1990-92)	1.3	3.5
आठवीं योजना (1992-97)	4.7	6.7
नवीं योजना (1997-2002)	2.1	5.5
दसवीं योजना (2002-07)		
2002-03	-7.0	4.0
2003-04	9.6	8.5
2004-05	1.1	6.9

तुलना में सस्ता हो जाता है। यदि इस अनुदान को बंद कर दिया जाय तो विकसित देशों की कृषि उत्पादन लागत बढ़ कर वास्तविक ऊंचे मूल्यों पर आ जायेगी और इससे हमारा कृषि उत्पदन सापेक्षत: सस्ता होने से उनके बाजारों में भी बिक जायेगा। हकीकत यह है कि विकासशील राष्ट्रों के किसान इस भारी अनुदान के कारण विश्व बाजारों में तो प्रतिस्पर्द्धा कर ही नहीं पाते अपितु घरेलू बाजारों से भी आयातित सस्ते माल के कारण बाहर हो जाते हैं। गौरतलब है कि विश्व व्यापार संगठन के तहत किये गये समझौते के कारण भारत 12 हजार करोड़ रुपये के अनाज का आयात करने के लिये बाध्य है। इसके अतिरिक्त, कृषि पदार्थों का विश्व बाजार बनने से कृषि प्रधान देशों के मध्य आपसी प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने से बाजार विस्तार के बावजूद भी कृषि उत्पादों के दाम बढ़ने के स्थान पर कम होते जा रहे हैं। 1998-2004 के दौरान कृषि के लिये व्यापार की शर्तें भी विपरीत रहीं। जिससे किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य न मिल पाने के कारण देश की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। विवश किसान अपनी उपज लागत की अपेक्षा कम कीमत पर बेचने को बाध्य हैं। यहीं नहीं, कर्ज के बोझ के तले दबे हमारे खाद्य सुरक्षा के प्रहरी किसानों के आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है जो कि हमारी अर्थ व्यवस्था पर विकास के नाम पर कलंक है। अब भारत में खेती न केवल अलाभकारी हो गई है अपितु अव्यवहारिक व अनुत्पादक भी हो गई है। विश्व व्यापार संगठन के तहत जिन नए कृषि सुधारों पर विचार चल रहा है उनके क्रियान्वित होने के अधिकाधिक किसानों के समक्ष शहर जाकर रिक्शा चलाने या दैनिक मजदूरी करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचेगा।

विकसित देश विश्व व्यापार संगठन के तहत किये गये समझौतों के अनुपालन में गंभीर नहीं है। जाहिर है कि ऊरुग्वे दौरे के दस वर्षों में अमेरिका व यूरोपीय महासंघ में समझौते के मुताबिक सब्सिडी में कम आने की अपेक्षा कुल सब्सिडी 180 अरब डालर से बढ़कर 300 अरब डालर हो गई। स्पष्ट है कि विकसित देशों की कथनी व करनी में कितना भारी अंतर है।

31 जुलाई 2004 को हुई विश्व व्यापार वार्ता में पुन: अमेरिका व यूरोपीय प्रदेश कृषि सब्सिडी में पहले वर्ष ही 20 प्रतिशत की कटौती करने, छह माह से अधिक अवधि वाले कृषि ऋण व कृषि निर्यात ऋण खत्म करने, आयात शुल्कों में कटौती करने व औद्योगिक बाजार खोलने के लिए सहमत हो गये हैं। लेकिन विश्व व्यापार वार्ता की यह नई तस्वीर भी संदेहास्पद है। अमीर व विकसित देश अनुचित व्यापारिक तरीकों से विकासशील देशों के बाजार खुलने से अधिक लाभांवित होने के लिए प्रयासरत होंगे। इसके अतिरक्ति, हमें विकसित देशों के पिछले कार्यकलापों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए जब उन्होंने समझौतों का उल्लघंन करते हुये विकासशील देशों के किसानों को तबाही के कगार पर पहुंचा दिया। इसके अतिरिक्त, विकसित देशों ने कृषि सब्सिडी को खत्म करने की कोई समयबद्ध योजना भी स्पष्ट नहीं की है। इस नए समझौते में विकसित देशों द्वारा प्रदत्त निर्यात ऋण सुविधा को समाप्त नहीं किया गया है सिर्फ इसकी समयावधि को चार वर्ष से कम करके 180 दिन कर दी गई है। असली तस्वीर तब सामने आयेगी जब इस कार्य योजना को यर्थाथ रूप में कार्यान्वित किया जायेगा।

विश्व व्यापार संगठन की नीति के अनुरूप भारत में कॉरपोरेट खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसके फलस्वरूप कृषि की बागडोर बहुराष्ट्रीय निगमों के हाथों में पहुंच रही है। पंजाब में चार बहुराष्ट्रीय निगमों ने हजारों एकड़ भूमि पट्टे पर ले ली है जिसमें लाखों किसान खेतीहर मजदूर में तब्दील हो गये है। यह सर्वविदित तथ्य है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करने के लिये अधिकाधिक उर्वरकों व कीटनाशकों के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करती है। अनियमित उर्वरकों व कीटनाशकों के प्रयोग से भूमि उर्वरा शक्ति खोकर बंजर होती जा रही है। ये कंपनियां देश में मशीनीकरण व यांत्रिकी को बढ़ावा दे रही है। जिससे बेरोजगारों की फौज बढ़ती जा रही है। देश के दीर्घकालीन हित व भूमि की बंजरता से इनको कोई सरोकार नहीं है। इस भांति, हाल ही में देश की संसद द्वारा पारित दवाओं व कृषि उत्पादों के लिए उत्पाद पेटेंट विधेयक से बीजों के लिये किसानों को बहुराष्ट्रीय निगमों पर निर्भरता बढ़ेगी।

यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व व्यापार संगठन की नीतियों के अनुरूप भारत के कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश में निरंतर कमी आ रही है जिससे छोटे व सीमांत किसान बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। 1993-94 में कृषि क्षेत्र में 13523 करोड़ रुपये के कुल निवेश में सरकारी निवेश 4467 करोड़ रुपये था अर्थात सरकारी अंश लगभग 33 प्रतिशत था जो कि कम होकर 1998-99 में 23.6 प्रतिशत व 2001 में सिर्फ 21 प्रतिशत रह गया। इस भांति, कृषि संबंधित अनुसंधान व विस्तार पर अब सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.3 से 0.5 तक प्रतिशत तक ही निवेश किया जाता है। ज्ञातव्य है कि 2003-04 में कृषि क्षेत्र में सकल निवेश सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का केवल 1.3 प्रतिशत है। इसे साथ ही, 190 के दशक में छोटे व सीमांत कृषकों को प्राप्त साख की दर में 1980 के दशक की अपेक्षा कमी आई है, जबकि इस अवधि के दौरान बड़े किसानों को प्राप्त साख में कोई कमी नहीं आई। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार इस अवधि के दौरान सीमांत कृषकों को दी गई प्रत्यक्ष वित्त की विकास दर 18.1 प्रतिशत से कम होकर 13 प्रतिशत हो गई है। इन सब नीतियों का कृषि संसाधनों व कृषि विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

भारत के विज्ञ प्रधानमंत्रियों ने भी स्वीकारा है कि उदारीकरण व वैश्वीकरण की नीतियों का लाभ समाज के निचले पायदान पर खड़े लोगों को नहीं मिला। जबकि वास्तविकता यह है कि इन प्रक्रियाओं ने गरीब व अमीर की दरार को और अधिक चौड़ा कर दिया है। सरकार कृषि उत्पादों के निर्यातों को बढ़ाने व कृषि सुधारों को क्रियान्वित करने के नाम पर छोटी-छोटी जोतों को मिलाकर बड़ी फार्म बनाना चाहती है। परन्तु इनकी स्थापना से छोटे किसान परिवारों की जोतें खत्म हो जायेगी। इन बड़ी फार्मों पर मशीनीकरण होने से कुछ लाख किसान ही रोजगार प्राप्त कर सकेंगे जबकि अभी साठ करोड़ लोग कृषि से अपना जीवनयापन कर रहे है उनके वैकल्पिक रोजगार की क्या व्यवस्था होगी, यह विचारणीय प्रश्न है।

हाल ही में देश के वित्तमंत्री श्री चिदंबरम ने भी विकसित देशों द्वारा प्रदत्त कृषि सब्सिडी के मुद्दे पर जोर देते हुये लंदन के अकादमिक जगत के प्रतिनिधियों व निवेशकों की बैठक में कहा था कि विकसित देशों की कृषि सब्सिडी विकासशील देशों के आर्थिक हितों के विपरीत है जिससे भारत जैसे विकासशील देशों को कृषि उत्पादों के निर्यात में भारी परेशानी

का सामना करना पड़ रहा है। हकीकत यह है कि विकसित देशों ने विश्व व्यापार संगठन की आड़ में ऐसी कृषि व व्यापारिक नीतियां स्थापित कर ली है जो उनके हितों के अनुकूल है और उनका प्रतिकूल असर विकासशील देशों के किसान वर्ग को झेलना पड़ रहा है।

सुझाव- यद्यपि हम विश्व व्यापार संगठन की वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रक्रियाओं से मुक्त नहीं हो सकते किंतु हमें विश्व, व्यापार संगठन में रहते हुए विकासशील देशों के हितों के रक्षार्थ गठित जी-20 के माध्यम से कृषि सब्सिडी के मुद्दे को उठाना चाहिये और वैश्वीकरण की प्रक्रिया को और अधिक सर्वसमाहितकारी तथा न्यायपूर्ण बनाने पर जोर देना चाहिये। विश्व व्यापार संगठन के तहत किये गये समझौतों व वैश्वीकरण व उदारीकरण के इस युग में कृषि को प्रतियोगितात्मक बनाकर ही इसके संभावित खतरों से बचते हुये कृषि को लाभदायक क्षेत्र के रूप में परिणित किया जाना संभव है। परिवर्तन व प्रतियोगिता समय की मांग है अत: हमें इनसे मुंह ना मोड़कर डटकर मुकाबला करने की व्यूहरचना बनानी होगी। सर्वप्रथम इसके लिये हमें कृषि को उत्पादकता बढ़ाने व लागत को घटाने के हरसंभव प्रयासों को प्राथमिकता देनी चाहिये। आंध्र प्रदेश के सूखाग्रस्त कुष्यम क्षेत्र के दो गांवों में इजरायली तकनीक से, ड्रिप सिंचाई व ग्रीन हाउस पद्धतियों का उपयोग करके सफेद प्याज, लाल गोभी व बेबी कार्न आदि का उत्पादन निर्यात हेतु किया जा रहा है जिससे न केवल निर्यात में वृद्धि हुई है अपितु इन गांवों की गरीबी भी दूर हो गई है। इनका अनुकरण देश के अन्य भागों के किसान भी कर सकते हैं।

केवल परंपरागत फसलों को उगाकर ही किसान समृद्ध नहीं हो सकता है। बदलती मांग व कीमतों के अनुरूप फसल प्रतिरूप में परिवर्तन आवश्यक है। प्राकृतिक विधि व जैविक खाद के उपयोग से उगाये गये खाद्य पदार्थों की मांग अमेरिका यूरोपीय यूनियन व जापान में तेजी से बढ़ रही है। वर्ष 2000 में 17.5 अरब डालर के ऐसे खाद्य पदार्थ बिके। ऐसा अनुमान है कि प्राकृतिक भोज्य पदार्थों की मांग प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ेगी। इस बढ़ती मांग के अनुरूप उत्पादन करके किसानों को लाभ उठाने के लिये प्रेरति किया जाना चाहिये। शुष्क खेती जल संरक्षण, कुशल व दक्ष सिंचाई व्यवस्था, जैविक खेती व कृषि शोध व विस्तार पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

अनाज, तिलहन, दाल, गन्ना व कपास की फसलों की उत्पादकता वृद्धि के लिये खेती की अधुनातन विधियों को अपनाने के लिये किसानों को प्रेरित किया जाना चाहिये ताकि वे अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में टिक सकें। भारत का विश्व में फलों व दुग्ध उत्पादन में प्रथम व सब्जियों के उत्पादन में दूसरा उत्पादन होने के बावजूद भी इनके उत्पादन होने के बावजूद भी इनके उत्पादन का केवल दो प्रतिशत भाग ही प्रोसेसिंग होता है। अमेरिका में किसानों को उनकी आय का 70 प्रतिशत, मलेशिया में 80 प्रतिशत, ब्राजील में 70 प्रतिशत व थाईलैंड में 30 प्रतिशत कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण से मिल रहा है जबकि भारत में किसानों को प्रसंस्करण से अपनी आय का केवल 2 प्रतिशत अंश प्राप्त होता है। अत: गांवो में ही विभिन्न फलों व सब्जियों की प्रोसेसिंग इकाईयों की एक श्रृंखला स्थापित करके किसानों के लाभ में वृद्धि किया जाना संभव है।

कृषि उत्पाद नाशवान है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शीत गृहों की सुविधा उपलब्ध नहीं होने के कारण 15 से 20 प्रतिशत अन्न सड़ जाता है। 55 प्रतिशत गांवों में बीज भंडारण व्यवस्था नहीं है, 80 प्रतिशत गांवों में कृषि औजारों के मरम्मत की सुविधा नहीं है व 60 प्रतिशत गांवों में बाजार केंद्र नहीं है। इन आधारभूत सुविधाओं के अभाव में किसान उदारीकरण व वैश्वीकरण जनित प्रतियोगिता का सामना करने में सक्षम नहीं है। अत: ग्रामों में गोदामों, शीतगृहों व बीज भंडारण की व्यवस्था को प्राथमिकता देनी होगी व साथ ही कृषि उत्पाद को लाने ले जाने के लिए वातानुकूलित वाहनों की व्यवस्था पर भी ध्यान देना अपेक्षित है।

कृषि में जोखिम अधिक है अत: इससे किसानों को सुरक्षा कवच प्रदान करने के लिए फसल बीमा योजना को अधिक व्यापक व तार्किक बनाते हुए बीमा प्रीमियम दर कृषकों की आय के अनुपात में रखना अधिक न्यायसंगत होगा। इसके साथ विकसित देशों का मुकाबला करने के लिए कृषि को उद्योग का दर्जा देते हुए उसे सहकारी के साथ-साथ व्यावसायिक भी बनाने की कोशिश करनी चाहिये। ग्रामीण अध: संरचना के विकास को प्राथमिकता देकर ही कृषि को अधिक प्रतियोगी व लाभप्रद बनाना संभव है। ग्रामीण विकास के इस महाभियान के पंचायत राज संरचनाओं व ग्राम सभाओं को भी वृहद् जिम्मेदारियां निभानी होगी।

चूंकि विकास दर बढ़ाने का मूलमंत्र कृषि ही है अतएव इस क्षेत्र के लिए ठोस व प्रभावी नीतियों के क्रियान्वयन से ही संपूर्ण अर्थव्यवस्था की धुंधली होती तस्वीर को उजला बनाना संभव है। हमें विश्व व्यापार संगठन के तहत किये गये समझौतों, वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रक्रियाओं का कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव का बारीकी से विश्लेषण करने के पश्चात ही उनको लागू करना चाहिये, हमें विकसित देशों के द्वारा दिखाये गये दिवा-स्वप्नों से दिग्भ्रमित नहीं होते हुए यथार्थ व व्यवहारिक नीतियों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

(लेखिका जी.एस.एस. गर्ल्स (पी.जी.) कालेज, चिड़ावा में अर्थशास्त्र की प्रवक्ता हैं)

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

विश्व व्यापार संगठन और विषमताएँ

आशुतोष कुमार पांडेय

वैश्वीकरण की आंधी में देशों की भौगोलिक सीमाएं अप्रासंगिक हो चुकी हैं। ऐसे में वैश्वीकरण उदारीकरण, निजीकरण, मुक्त व्यापार का वाहक बना विश्व व्यापार संगठन (डब्यू टी.ओ.) दुनिया का सबसे शाक्तिशाली और बाध्यकारी आर्थिक संगठन बन कर उभरा हैं इसके नियम-कानून सदस्य देशों पर बाध्यकारी रूप से लागू होते हैं। जिसके प्रभाव से जंगलों में रह रहे आदिवासी समूह, समाज का पिछड़ा तबका, लघु उद्योगों से अपनी रोजी-रोटी जुटाते लोग सभी प्रभावित होंगे।

वैश्वीकरण के एजेंट बने पश्चिमी देश मल्टी नेशनल कंपनियां, बड़े-बड़े विद्वान डब्लू.टी.ओ. और मुक्त व्यापार के लाभ गिनाते नहीं थकते हैं। गरीबी मिटाने, रोजगार बढ़ाने जीवन स्तर में सुधार लाने जैसे लुभावने नारे दुनिया भर में जोर-शोर से प्रचारित-प्रसारित किये जा रहे हैं।

दूसरी तरफ विकासशील देशों में आत्महत्या करने पर मजबूर किसान, गांवों से शहर, कंपनी दर कंपनी भटकते मजदूर, समाज की मुख्य धारा और विकास से कटे आदिवासी, जनजातियां, दलित, असहाय बच्चे और अमानवीय श्रम में लिप्त महिलाएं लघु उद्योगों के मलबे पर फलती-फूलती मल्टी नेशनल कंपनियों से पर्दा उठाने में हमारा बौद्धिक वर्ग विफल क्यों रहा है? क्या इन वर्गों पर पड़ने वाली इन संगठनों की मार अभी भी अनुत्तरित रह जाएगीं? इन प्रश्नों की तलाश विश्व व्यापार संगठन के डार्विनवादी सिद्धान्त में की जा सकती है।

डार्विन ने अपने विकासवादी सिद्धान्त में कहा था कि विकास की होड़ में सिर्फ शक्तिशाली ही जीवित रह जाएगें और शक्तिहीन लुप्त हो जाएगें। डार्विन का यह सिद्धान्त वैश्वीकरण और डब्यू.टी.ओ भी दस साल का सफर तय कर चुका है तो विकसित और विकासशील देशों, अमीरों और गरीबों के बीच की खाई और गहरी होती जा रही है। शक्तिहीन देशों की कीमत पर आखिर शक्तिशाली राष्ट्र विकास का जश्न क्यों मना रहें हैं विश्व व्यापार संगठन के निर्धारित लक्ष्यों में शामिल हैं-

• सभी के जीवन स्तर में वृद्धि करना; • पूर्ण रोजगार प्राप्त करना; • वस्तुओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना; • सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना; • विश्व के संसाधनों की अनुकूलतम उपयोग करना; • सतत विकास के अवधारण को अपनाना तथा पर्यावरण संरक्षण का उपाय करना, आदि

इन्हीं लक्ष्यों का प्रचार किया जा रहा है। जबकि वास्तविकता इसके ठीक विपरीत हैं उदाहरण के लिए विकसित देशों में लागों का जीवन स्तर तृतीय विश्व के देशों से कई गुना बेहतर है। यू एन डी पी की रिपोर्ट इसकी प्रमाण है। मशीनों के आगमन से छोटे-छोटे रोजगारों के समाप्त होते अवसर पूर्ण रोजगार की अवधारणा को झूठा सिद्ध करते हैं।

वस्तुओं का व्यापार भी विकसित देशों के पक्ष में है। वैश्विक व्यापार में यूरोपियन यूनियन का हिस्सा 18 प्रतिशत है तो अकेले अमेरिका का हिस्सा 15 प्रतिशत से ज्यादा है। सेवाओं के उत्पादन और व्यापार में विकसित देश संरक्षणवादी रवैया अपनाते है जिससे गरीब देशों को भारी हानि उठानी पड़ रही है। वैश्विक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग की जगह तृतीय विश्व के देशों के कच्चे मालों और उनकी जैव विविधता का दोहन जारी है। विकास की रफतार में सतत विकास या पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दे की बातों को क्योटो प्रोटोकाल से अमेरिका के अलग रहने के उदाहरण से समझा जा सकता है।

विलफ्रेडो पेरेटो ने ठीक ही कहा था कि बिल्ली चूहों को खा जाती है। और कहती है कि यह सब चूहों के भलाई के लिए कर रही है। पैरेटो का यह कथन विश्व व्यापार संगठन के निर्धारित लक्ष्यों उद्देश्यों के माध्यम से विकसित देशों पर लागू होता है।

सिंगापुर से हांगकांग तक की बैठकों में किये गये वादे महज तक भुलावा सिद्व हुए हैं। पहली ही बैठक में कृषि सब्सिडी (सिंगापुर मूद्वदा) समाप्त करने की बात कही गयी थी जो भविष्य में सच होती नहीं दिख रहा है। द्वितीय बैठक में जेनेवा (1998) में विकसित देशों को विशेष महत्व देने की बात की गयी पर सच कुछ और है व विकसित देश संरक्षणवादी रवैया अपनाते हैं। जैसे अमेरिका का सुपर-301 तृतीय बैठक जनेवा (1999) इस बैठक में पर्यावरण और मानवाधिकार जैसे मुद्दे भी हस्तगत करना चाहता था। विकासशील देशों के भारी विरोध के बाद इन मुद्वदों को छोड़ना पड़ा।

चौथी बैठक दोहा (2001) में बौद्विक संपदा अधिकार से एड्स जैसी जानलेवा बीमारियों पेटेन्ट से छूट की बात की गयी जबकि वास्तविकात तो यह है कि इन बिमारियों के लिए कोई कारगार दवाएं तक भी बाजार में नहीं आयी हैं।

दोहा डेवलपमेन्ट में कृषि निर्यात सब्सिडी में कटौती पर हुई जो वर्ष 2013 तक करना है जिसमें तृतीय देशों का हिस्सा मात्र एक प्रतिशत है।

डब्लू.टी.ओ के बाध्यकारी कानूनों से राज्य सरकारें अपनी नीतियां,

योजनाएं बाजार की शक्तियों के दबाव में निर्धारित करने लगी है। राज्य, कल्याण से अपना हाथ समेटने लगी है। जिसका कुप्रभाव समाज की धारा से कटे लोगों पर पड़ेगा।

नाबार्ड, ट्राइफेड नेफेड, जनजातियों और गैर-सरकारी सहयता राशि आवंटन में असहाय महसूस करेगी।

विश्व व्यापार संगठन, वैश्वीकरण, मुक्त व्यापार, बौद्विक संपदा अधिकार की सबसे अधिक मार जंगलों में प्राकृतिक रूप से जीवन यापन करते जनजातियों और आदिवासियों पर पड़ेगा। उनके अपार जैव संसाधनों और जैव विविधता की लूट मची होगी। उनकी जड़ी-बूटियों का पेटेन्ट विकसित देशों के पास होगा। इन सब सावधानियों पर ध्यान देना ज़रूरी है।

अपने जीवन संग्राम में लड़ रहे मजदूर अपनी गाढ़ी कमाई से पिज्जा से भूख नहीं मिटा सकते। कचड़ों के ढेर पर मोबाइल लिए कबाड़ी हेलो-हेलो करे तो सवाल तो खड़े होते ही हैं। हमारे सामने असमान विकास का ऐसा अमानवीय नजारा न खड़ा हो जाय जिसमें महिलाएँ और बच्चे अमानवीय श्रम में लिप्त हों

लघु उद्योगों के मलवे पर मल्टी नेशनल, ट्रांशनेशल कंपनिया फल-फूल रही हैं। अलीगढ़ के ताले, रामपूरी चाकू या बनारस की साड़ी बाजार से लुप्त न हो जाय। उन्नत प्रौद्योगिकी से उत्पादित सस्ते माल हमारे बाजारों में भरे पड़े होगें जैसे हाल में चाइनीज वस्तुओं का नजारा हैं कपड़ा उद्योग मे लगे बुनकरों और रंगरेजी की हड़िया फिर गंगा के दोआब में, गुजरात, मुंबई के मैदानों में बिखरी पड़ी होंगी।

कृषि हमारे ग्रामीण किसानों लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। कमोबेश यही हाल सभी विकासशील देशों में है। जिसपर विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से विकसित देशों द्वारा हमला किया जा रहा है। हमारे यहा आत्महत्या करने पर मजबूर किसानों को उनका लागत मूल्य भी नहीं मिल पा रहा है जबकि जापान अमेरिका यूरोपीय देश 2005 में 360 अरब डालर सब्सिडी दे रहे थे। यानी कि कुल वैश्विक सब्सिडी का 82 प्रतिशत हिस्सा। पिछले तीन वर्षों में घरेलू कृषि सब्सिडी पर इन देशों ने राज्य सहायता तीन सौ प्रतिशत तक बढ़ा दी जिससे विकासशील देशों में और संकट की स्थिति पैदा हो रही है। इस मुद्दे पर विकासशील देशों की घेराबंदी से बच ने के लिए ब्लूबाक्स, अरबर बाक्स और ग्रीन बाक्स की नयी कहानी रची गयी है।

विश्व व्यापार संगठन का प्राथमिक उद्देश्य व्यापार उदारीकरण करना है इसके लिए आयात-निर्यात शुल्क समाप्त करना, टैरिफ में कटौती कर विकासशील देशों के मार्केट में पहुंचना, विदेशी निवेशी के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के अधिकांश देशों के संसाधनों और कच्चे मालों पर पकड़ उनके बाजारों में घुसपैठ उपभोगता पर कब्जा जमाना है। चूंकि तृतीय विश्व के देशों का विश्व व्यापार में कुल हिस्सा बहुत कम है ऐसे में मुक्त व्यापार का वास्तविक लाभ उन्नत प्रौद्योगिकी से सस्ते उत्पादक देशों को ही होगा।

सारांशत: विश्व व्यापार संगठन न्यूक्रोमा की नव-साम्राज्यवाद की भविष्यवाणी की सच करने की कोशिश ही कर रहा है। ऐसे में समाजिक न्याय की चेतावनियों को अपने शब्दों में कहते हुए डब्लू.टी. ओ पर लागू किया जाय तो-विश्व व्यापार संगठन सपन्न देशों और लोगों का सुख चाहे जितना बढ़ा ले इससे दु:खी लोगों का दु:ख कम नहीं किया जा सकता है।

जिससे उत्तर के अमीर देशों और दक्षिण के गरीब देशों के बीच खाई गहरी होती जाएगी जो वैश्विक शांति और संतुलन के लिए खतरा होगा।

(लेखक स्वंतत्र पत्रकार हैं)

विशेष आर्थिक क्षेत्र-प्रत्यक्ष फायदे

विशेष आर्थिक क्षेत्रों से होने वाले कुछ फायदे इस प्रकार हैं-

- विशेष आर्थिक क्षेत्रों और इकाइयों के विकास में दिसंबर, 2006 तक 70 करोड़ अमरीकी डालर तक निवेश होने की आशा।
- दिसंबर, 2007 तक प्रदर्शित निवेश एक लाख करोड़ रुपए, इसमें 25,000 करोड़ रुपए का सीधा विदेशी निवेश शामिल है।
- दिसंबर, 2007 तक प्रदर्शित रोजगार 5 लाख व्यक्ति।
- विशेष आर्थिक क्षेत्रों से घरेलू शुल्क क्षेत्र में उद्योगों के साथ ठोस बैकवर्ड और फार्वड लिंकेज स्थापित होने की आशा।
- विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना से देश में ऐसे विनिर्माण और सेवा उद्योगों का तेजी से विकास होगा, जिनमें श्रमिकों की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

राष्ट्रीय किसान आयोग की रिपोर्ट

गिरीश चन्द्र पाण्डे

राष्ट्रीय किसान आयोग के अध्यक्ष कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन द्वारा केंद्र सरकार को प्रस्तुत अपनी पांचवीं और अन्तिम रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ जिस एक महत्वपूर्ण सुझाव का उल्लेख किया गया है वह यह है कि देश में कृषि के विकास को कृषक परिवारों की निवल आय से मापा जाए न कि उसके द्वारा उत्पादित करोड़ों टन अनाज से। निश्चित तौर पर यह देश में किसानों के कल्याण को दिशा में दिया गया एक महत्वपूर्ण सुझाव है क्योंकि अभी तक का अनुभव रहा है कि हमने अपने कृषि उत्पादन की चिन्ता तो की लेकिन उसके उत्पादक के समक्ष आने वाली कठिनाइयों तथा उसके परिवार के जीवन-स्तर की ओर हमने कभी विचार नहीं किया। डा. स्वामीनाथन का यह सुझाव इस बात को भी इंगित करता है कि अभी तक किसानों को उनके द्वारा उत्पादित फसल का यथोचित मूल्य नहीं मिला, इसलिए उन्होंने रिपोर्ट में न्यूनतम समर्थन मूल्य के बजाय बाजार की मौजूदा कीमतों पर अनाज खरीद की सिफारिश की है और कृषि पर ब्याज दर को घटाकर 4 प्रतिशत तक करने पर जोर दिया है। फसल की उचित कीमत के न मिलने और ब्याज की ऊंची दर की वजह से ही आज का किसान थका-हारा है उसकी आर्थिक स्थिति कमजोर है और प्राकृतिक आपदा या अन्य किसी वजह से फसल के नुकसान होने की स्थिति में आत्महत्या करने को विवश है। अनुमान है कि आज भी 80 प्रतिशत किसानों को अपनी कृषि से पर्याप्त आय नहीं होती। प्रश्न उठना लाजिमी है कि किसान की दशा में कैसे सुधार हो और देश के इस अन्नदाता को आत्मघाती कदम उठाने को मजबूर न होना पड़े। यद्यपि केंद्र सरकार ऐसे पीड़ित परिवारों को पुनर्वास पैकेज देती रही है और उनके कृषि ऋणों की माफी भी करती है। परंतु ये उपाय अस्थाई स्वरूप के हैं। इस बात से भला कौन इंकार करेगा कि असमय में किसान की जीवन लीला समाप्त होने से उसकी भरपाई नहीं की जा सकती। इसलिए समय पर यदि उसे उचित मूल्य पर बीज, खाद की आपूर्ति की जाए, वर्षा जल संचयन पर जोर देते हुए देश की विभिन्न नदियों को आपस में जोड़कर सिंचाई की उपयुक्त व्यवस्था की जाए, चालू सिंचाई परियोजनाओं पर फौरन अमल हो, सूखा प्रवण तथा बंजर भूमि पर जल संभरण नीति पर जोर देने के साथ अनाज और फल-सब्जी की मार्केटिंग में बिचौलियों का खात्मा किया जाए फसल बीमा की ठोस नीति बने और फसल पश्च प्रबंधन पर भी ठोस कार्रवाई की जाए तो किसान निश्चित तौर पर अपने को सुरक्षित महसूस करेगा। यहां इस बात पर भी गौर करना जरूरी है कि आज सरकार द्वारा उन किसानों की बात तो बराबर की जाती है जिनके पास बड़ी-बड़ी जोत हैं, ट्रैक्टर है और सिंचाई की माकूल व्यवस्था है लेकिन सुदूर ग्रामीण अंचल के उन छोटे और सीमान्त किसान आज भी हाशिए पर हैं जिनके पास ये सारी सुविधाएं नहीं हैं। उनकी कृषि जोत का आकार छोटा है, वे दूर-दूर तक बिखरे हैं, एक जोड़ी बैल भी उनके पास नहीं है और दूसरे बैल के लिए उन्हें दूसरे का मुंह ताकना पड़ता है। पर्याप्त पशुधन के न होने से उनके समक्ष खाद की समस्या बराबर बनी रहती है, महंगे उर्वरकों के उपयोग से उनकी जमीन की उर्वर शक्ति को ह्रास होने के साथ ही वे कर्ज में भी डूबे रहते हैं। उन्हें वर्ष भर पसीना बहाने के बावजूद दो जून की रोटी भी मयस्सर नहीं है। अधिकांश जमीन वर्षा जल पर निर्भर होने की वजह से बराबर सूखे की समस्या बनी रहती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि उनकी उत्पादकता, गुणवत्ता तथा लाभप्रदता में बढ़ोतरी के साथ ही कृषि आधारित वाणिज्यिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाए।

कृषि के यथोचित विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि हम राज्य विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तदनुसार कृषि नीति तैयार करे। यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि मैदानी, रेगिस्तानी तथा पहाड़ी अंचल की कृषि में जमीन-आसमान का अंतर है। यही नहीं, एक राज्य में जलवायु की विभिन्न दशाएं मौजूद है। आंध्र प्रदेश के तेलगाना क्षेत्र को लें तो वहां वारंगल जिला पूर्णत: वर्षा पर निर्भर है, इसलिए किसान के समक्ष फसल सूखने की बराबर आशंका बनी रहती है और जिस कारण वहां किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर आत्महत्या करने की खबर मिलती रहती है जबकि इसी राज्य के तटवर्ती जिले में पानी की बहुतायत है सूखे की आशंका नहीं है लेकिन वहां किसानों के लिए ऋण की उपयुक्त सुविधा नहीं है। इसी प्रकार महाराष्ट्र के विदर्भ का 94 प्रतिशत क्षेत्र शुष्क है वहां यद्यपि सिंचाई की पर्याप्त संभावनाएं हैं लेकिन उनका दोहन करना जरूरी है। कृषि के विकास के संबंध पंचायती राज संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है जो किसान को बीज, खाद मुहैया कराने तथा फसल के भण्डारण तथा उसकी बिक्री में सहायता प्रदान कर सकते हैं। राज्यों में स्थित कृषि अनुसंधान केंद्रों के वैज्ञानिकों द्वारा क्षेत्र विशेष में जाकर वहां की मिट्टी जलवायु वर्षा आदि का अध्ययन कर नए किस्म के बीजों पर अनुसंधान तथा विकास का कार्य करना जरूरी है। इस संबंध में केंद्र सरकार द्वारा ई-गवर्नेंस ब्राड बैंड्स इंटरनेट की सुविधा प्रदान कर प्रारंभ

में 600 ग्रामों में 'ग्रामीण कॉमन सर्विस सैंटर' की स्थापना करना सराहनीय है जिसमें किसानों को न केवल उनकी खेती-बाड़ी से जुड़ी और मौसम आदि की जानकारी प्राप्त होगी बल्कि उन्हें उनके उपज का सही मूल्य मिलने में भी सहायता मिलेगी।

यह विडंबना है कि एक ओर हम दूसरी हरित क्रांति पर जोर देते हुए सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में दो अंकों की विकास दर हासिल करने के लिए सेवा तथा विनिर्माण क्षेत्र के साथ ही कृषि के विकास पर भी पूरा ध्यान देने की बात करते हैं तो दूसरी ओर किसानों से कौड़ी के मोल उनकी उपजाऊ जमीन का अधिग्रहण कर उसे देशी-विदेशी कंपनियों को उनके उद्योगों की स्थापना हेतु बेच रहे हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) का मामला हमारे सामने हैं। यही नहीं, नब्बे के दशक में सरकार ने देश में निर्यातोन्मुख अर्थव्यवस्था पर जोर देते हुए किसानों से अपनी परंपरागत खेती के बजाय नकदी फसल बोने पर जोर दिया गया जिसके दुष्परिणाम दो रूप में सामने आए। पहला, घरेलू उपभोग के लिए अनाज, दालों और बाजरा की खेती में कमी आयी तो दूसरी ओर नकदी फसलों हेतु अपेक्षित बीज, खाद में किसानों को बहुत ज्यादा खर्च करना पड़ा। इसी प्रकार बीटी कॉटन का अनुभव भी अच्छा नहीं रहा। मंहगे बीज और कीटनाशकों की खरीद में किसान को अनाप-शनाप ऋण लेना पड़ा और फसल बर्बाद होने की स्थिति में अपनी जान गंवानी पड़ी। यहां यह उल्लेखनीय है कि मौजूदा उदारीकरण के दौर में भले ही सरकार ने विनिर्माण तथा सेवा क्षेत्र में सतत आर्थिक विकास करते हुए बाजार उन्मुख अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया परंतु उसका लाभ समान रूप से सभी लोगों को नहीं मिला। इसी प्रकार कृषि के संबंध में अब तक आबंटित बजट का अधिकांश भाग सिंचाई तथा फसल पश्च ढांचागत सुविधाओं जैसे उत्पादकता संबंधी उपायों के बजाय सब्सिडी पर खर्च किया जाता रहा है। परिणामस्वरूप कुल पूंजी निर्माण के भाग के रूप में कृषि में पूंजी निर्माण वर्ष 1999-2000 में 9.85 से घटकर 2005-06 में 7.8 प्रतिशत हो गया। शहरों के अंधाधुंध विस्तार से भी शहरी लोगों के आवास की आवश्यकता पूर्ति करने हेतु किसानों को अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ा है। बढ़ते शहरीकरण की इस समस्या की तह में जाकर देखें तो पाएंगे कि गांवों में कृषि के अलावा रोजगार के अन्य वैकल्पिक साधन न होने से यह समस्या विकट हुई है। गांव वीरान होते जा रहे हैं जबकि शहरों में जनसंख्या का बेतहाशा दबाव बढ़ा है। इसलिए किसान के लिए बागवानी मिशन के तहत फसल विविधीकरण तथा कुटीर घरेलू ग्रामोद्योगों को भी पुनर्जीवित करना जरूरी है ताकि उसकी कृषि मूल्य, ऋण तथा व्यापार संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय लेने, पादप किस्मों के संरक्षण तथा किसान अधिकार अधिनियम, जैव विविधता अधिनियम तथा खाद्य विधेयक पर विचार करने हेतु कृषि को समवर्ती सूची के अंतर्गत लाने, सेज को कृषि भूमि न देने, भूमि अधिग्रहण नियमों में संशोधन कर खेतिहर मजदूरों को जमीन बांटने, बेरोजगारी का समाधान, कृषि ऋण नीति का आकलन कर नए सिरे से ऋण संरचना का निर्धारण करते हुए कम ब्याज दर पर कर्ज देने, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी को काम के बदले अनाज योजना तथा खाद्य गारंटी से जोड़ने, कुक्कुट तथा मत्स्य पालन पर जोर देना प्रमुख है। डा. स्वामीनाथन ने हाल में गठित छठे वेतन आयोग को भी सलाह दी है कि यह गांवों में जाकर किसान परिवारों के जीवन स्तर का भी अध्ययन करें। आयोग ने हरित क्रांति के महत्वपूर्ण सूत्रधार राज्यों - पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश के अलावा बिहार मध्य प्रदेश, उड़ीसा जैसे बीमारू राज्यों पर भी ध्यान केंद्रित करने की ताकीद की है। इस प्रकार आयोग की इस रिपोर्ट में कृषक के साथ ही कृषि से जुड़ी समस्याओं पर भी ध्यान आकृष्ट किया है और उनका समाधान विभिन्न मंत्रालयों के बीच आपसी समन्वय से ही संभव है। इसलिए कृषि मंत्रालय के साथ ग्रामीण विकास, पंचायती राज, वाणिज्य और जल संसाधन मंत्रालय की सामूहिक जिम्मेदारी है कि वे आयोग की सिफारिशों के संबंध में गहन अध्ययन कर उन्हें लागू करने की दिशा में कदम उठाएं। आयोग ने इस तथ्य को भी रेखांकित किया है कि देश के 66 फीसदी किसानों के पास खेती के लिए एक हैक्टेयर से भी कम जमीन है।

आयोग ने देश से भुखमरी मिटाने हेतु 6-सूत्रीय कार्ययोजना का भी उल्लेख किया है। आयोग का स्पष्ट मत है कि भूख और गरीबी आपस में गुंथे हैं, इसलिए उनके समाधान हेतु नियोजन तथा कार्यान्वयन में बेहतर तालमेल होना नितांत आवश्यक है। आयोग ने गर्भवती महिलाओं के साथ ही बच्चों के पोषण पर भी ध्यान दिया है और लौह, आयोडीन, विटामिन ए जैसी कमियों को दूर करने के लिए समेकित खाद्य सुरक्षा पर ध्यान दिया है। इसके अतिरिक्त, स्व-सहायता समूहों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए उन्हें खाद्य भण्डारण तथा जल संचयन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका देने पर जोर है। छोटे तथा सीमान्त किसानों के हितों की रक्षा, उनके लिए लाभकारी मूल्य तथा बाजार उपलब्ध कराने का अवसर प्रदान करने पर भी रिपोर्ट में फोकस है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करने की आवश्यकता जताते हुए उनमें स्थानीय अनाज जैसे बाजरा, ज्वार, रागी जैसे खाद्यान्न को बेचने पर जोर दिया गया है।

उम्मीद करें कि आगामी अक्तूबर-नवंबर की राज्य कृषि मंत्रियों की बैठक में आयोग की सिफारिशों के संबंध में गहन विचार विमर्श होकर एक ठोस कृषि नीति मूर्त रूप ग्रहण करेगी ताकि पिछले वर्षों से स्थिर 2 प्रतिशत की कृषि विकास दर (जबकि दसवीं पंचवर्षीय योजना में यह 4 प्रतिशत आंकी गयी थी) में वृद्धि हो सके और किसानों की क्रय शक्ति भी बढ़े तथा उनका जीवन स्तर ऊंचा हो सके। चूंकि राज्य का विषय होने से कृषि के संबंध में केंद्र की भूमिका उत्प्रेरक की है, इसलिए कृषि विकास के संबंध में सर्वप्रथम राज्यों द्वारा ठोस पहल करने की दरकार है। कृषि के विकास के संबंध में इस समय सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता इसके ढांचागत तथा गैर-कृषि क्षेत्र के विकास से भी जुड़ा है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

कृषि, कृषक और विसंगतियां: किसान आत्महत्या

रमेश कुमार दुबे

देश में किसानों की आत्महत्याओं का एक अभूतपूर्व सिलसिला जो 1997 में शुरू हुआ था वह रूकने का नाम नहीं ले रहा है। महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक, इन तीन राज्यों में अभी तक 25,000 से अधिक किसानों ने आत्महत्या की है। आज देश में औसतन 24 किसान प्रतिदिन आत्महत्या कर रहे हैं, अकेले विदर्भ में ही 6 किसान प्रतिदिन आत्महत्या कर रहे हैं। "अन्नदाता" किसानों द्वारा आत्महत्या किया जाना भारतीय कृषि का एक बहुत ही दुखद पक्ष है। आजादी के बाद भारत के किसान गरीब रहे, कर्ज में रहे लेकिन इतना बड़ा संकट कभी नहीं आया कि स्वयं कीटनाशक दवा पीकर अपनी जान दे दें। किसानों की आत्महत्या का तात्कालिक कारण सूखा, बाढ़ खेती की बढ़ती लागत, बढ़ती जनसंख्या, जोतों का विखंडन, उपज का उचित मूल्य न मिलना आदि बताए जाते हैं, लेकिन वास्तविक कारण समझने के लिए अधिक गहराई में जाना होगा। इसे लिए 1960 के दशक में शुरू की गई नई कृषि युक्तियों (हरित क्रांति) और 1991 में आरंभ की गई आर्थिक उदारीकरण की नीतियां का गहन विश्लेषण अपेक्षित है।

हरित क्रांति का प्रभाव

स्वतंत्रता के बाद खाद्यान्न क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। सिंचाई योजनाएं, सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय कृषि प्रसार सेवा जैसी योजनाएं शुरू की गई। 1960 के दशक में परंपरागत भारतीय फसलों (ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, कोदो, दालां आदि) के स्थान पर गेहूं धान जैसी चुनिंदा फसलों की आयातित संकर किस्मों को रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों, सिंचाई, डीजल-बिजली, सहकारिता आधार पर ऋण तथा विपणन सुविधाएं और सुरक्षित भण्डारण प्रणाली पर अपनाया गया। इसे हरति क्रांति की संज्ञा दी गई। इसके मूल में यह विचार था कि कृषि भूमि में वृद्धि किए बिना किसी प्रकार उत्पादकता में वृद्धि की जाय। हरित क्रांति के बाद खाद्यान्नों के उत्पादन, उत्पादकता एवं क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हुई। लेकिन इससे परंपरागत कृषि प्रणाली की घोर उपेक्षा हुई। खेती की लागत दिनों-दिन बढ़ती गई लेकिन उसी अनुपात में फसल का मूल्य नहीं बढ़ा। इस तथ्य की पुष्टि पिछले 5 वर्षों के गेहूं के न्यूनतम् समर्थन मूल्यों (एमएसपी) को देखने से स्पष्ट हो जाएगी। 2000-01 में गेहूं का एमएसपी 6.10 रुपये प्रति किग्रा था तो तीन सूखे झेलने के बावजूद यह 2005-06 में 6.50 रुपये प्रति किग्रा तक ही पहुंच पाया। अर्थात पांच वर्ष में कीमतें बढ़ी मात्र 40 पैसे। इसी तरह धान का एमएसपी पिछले तीन वर्षों के दौरान एक सा बना रहा लेकिन बीज, उर्वरक, कीटनाशक और बिजली जैसे निवेशों की लागत प्रतिवर्ष 10-15 प्रतिशत बढ़ गई।

हरित क्रांति के अंतर्गत दक्षिण और मध्य भारत में व्यावसायिक फसलों (कपास, तंबाकू, सूरजमुखी, सोयाबीन आदि) को प्रमुखता मिली। इस व्यावसायिक खेती में एक ओर तो लागत अधिक लगती है तो दूसरी ओर इन्हें लंबे समय तक सुरक्षित भी नहीं रखा जा सकता। सिंचाई, बीज, उर्वरक, कीटनाशक, मशीन आदि का खर्च बहुत अधिक हो जाता है। जिससे अधिकांश किसानों के लिए ऋण लेना अनिवार्य हो गया। शुरूआती वर्षों में सरकार ने बैंकों, सहकारी संस्थाओं आदि के

तालिका-1

कृषि क्षेत्र को दिया जाने वाले सांस्थानिक ऋण (करोड़ रुपये में)

एजेंसी	1988-89	1999-2000	2000-01	2001-02	2002-03	2003-04	2004-05
सहकारी बैंक	15,957	18,260	20,718	23,524	23,636	26,959	31,231
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	2,460	3,172	4,220	4,854	6,070	7,581	12,404
वाणिज्यिक बैंक	18,443	24,733	27,807	33,587	39,774	52,441	81,481
अन्य एजेंसियां	--	103	82	80	80	--	192
योग	36,860	46,268	52,837	62,045	69,560	86,981	12,5309

स्रोत: कृषि एवं सहकारिता विभाग की वार्षिक रिपोर्ट-2005-06

माध्यम से अनुदान व सस्ती ब्याज दरों पर किसानों को यह ऋण दिलवाया तथा व्यावसायिक खेती की ओर आकर्षित किया। लेकिन बाद के वर्षों में इन ऋणदाता संस्थाओं की दयनीय स्थिति और विश्व बैंक व अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव के फलस्वरूप ऋण का यह स्रोत सूखने लगा। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि किसानों को फिर से निजी साहूकारों से ऊंची ब्याज दरों (30-40 प्रतिशत) पर ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। पिछले डेढ़ दशक में सरकारी बैंकों से किसानों को मिलने वाले ऋणों के अनुपात में निरंतर कमी आई है। पहले 15-20 प्रतिशत तक बैंक-ऋण खेती के लिए दिया जाता था अब यह घटकर 9-10 प्रतिशत तक आ गया है। यह एक विडंबनापूर्ण स्थिति है कि देश में मारूति कार खरीदने के लिए मात्र 8 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण सहजता से उपलब्ध है लेकिन देश की दो-तिहाई जनसंख्या का भरण-पोषण करने वाले किसानों को इससे ऊंची ब्याजदर पर। जटिल नियम-कानून, अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियों, बैंक अधिकारियों के असहयोग के कारण विशेष छूट ब्याजदरों का लाभ बड़े व संपन्न किसान ही उठाते हैं जबकि लघु व सीमांत किसानों को महंगे अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है।

तालिका से स्पष्ट है कि ऋण की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है, लेकिन कुल ऋण में सहकारी संस्थाओं का हिस्सा कम हुआ है। 1998-99 में इनका हिस्सा जहां 43.29 प्रतिशत था वहीं 2004-05 में वह कम होकर 24.92 प्रतिशत रह गया। जबकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों सहित व्यावसायिक बैंकों के हिस्से में पर्याप्त वृद्धि देखी गई है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की रिपोर्ट ने पहली बार ग्रामीण भारत पर बढ़े ऋण की ओर संकेत किया है। देश के 48.60 प्रतिशत किसान ऋण के जाल में फंसे हुए हैं और प्रत्येक किसान पर औसत 12585 रुपये का ऋण है। आंकड़ों के अनुसार देश भर में 4.86 करोड़ किसान परिवार ऋणग्रस्त है। यह समस्या बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों में न होकर आंध्र प्रदेश, कनोटक, केरल, तमिलनाडु और पंजाब जैसे तथाकथित प्रगतिशील राज्यों में अधिक है। इन राज्यों में 60 प्रतिशत से अधिक किसान परिवार ऋणग्रस्त हैं। सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण का बोझ उन राज्यों में तेजी से बढ़ा है जो व्यावसायिक खेती की ओर उन्मुख हुए हैं। बढ़ती ऋणग्रस्तता, फसल की बरबादी, तनाव आदि की परिणति किसानों की आत्महत्या में हो रही है। हरित क्रांति का दौर अब न केवल समाप्त हो चुका है बल्कि किसानों की बढ़ती आत्महत्याओं के कारण आज इसे रक्तिम क्रांति कहना अधिक उपयुक्त होगा।

उदारीकरण का प्रभाव

कृषि संकट को बढ़ाने में 1991 में शुरू की गई उदारीकरण की नीतियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस दौरान कृषि क्षेत्र की प्रमुख चिंताओं में गिरती उत्पादकता, उच्च निवेश लागत, कम होता सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश, बढ़ता जनसंख्या दबाव, कुल बोए गए क्षेत्र में स्थिरता, संस्थागत ऋण सुविधाओं में कमी, मात्रात्मक प्रतिबंध हटाने के कारण कृषि आयात में हुई वृद्धि आदि शामिल है। इसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र की औसत वार्षिक दर निरंतर गिरती जा रही है-

तालिका-2

कृषि क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर (स्थिर मूल्य पर)

योजना काल	कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में	खाद्यान्न उत्पादन में
सातवीं योजनावधि में	3.2 प्रतिशत	--
आठवीं योजनावधि में	4.7 प्रतिशत	4.4 प्रतिशत
नौंवी योजनावधि में	2.1 प्रतिशत	1.2 प्रतिशत
दसवीं योजनावधि के प्रथम चार वर्षों में	1.5 प्रतिशत	ह्रास 0.3 प्रतिशत

स्रोत: आर्थिक समीक्षा - 2005-06

उदारीकरण पूर्व एवं उदारीकरण पश्चात् अवधि में कृषि विकास की तुलना

भारतीय कृषि ने उदारीकरण के पूर्व के दशक में 3 प्रतिशत से अधिक की प्रभावशाली वृद्धि दर्ज की परंतु आर्थिक उदारीकरण के बाद के दशक में भारतीय कृषि के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर में निरंतर कमी आई है। इसे निम्न तालिका से समझा जा सकता है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उदारीकरण के बाद सभी फसलों की उत्पादकता दर में कमी आई है। यह कमी गहरे अर्थों में न केवल खाद्य सुरक्षा के लिए चिंताजनक है अपितु कृषि की सतरकता और ग्रामीण जीवन के भरण-पोषण की दृष्टि से भी।

किसानों की बढ़ती आत्महत्या दर का एक बड़ा कारण विश्व व्यापार संगठन की (अ) अन्यायपूर्ण नीतियां भी हैं। विश्व व्यापार संगठन (1985) के कृषि समझौते के अनुसार कृषि व्यापार को भी विश्व व्यापार संगठन के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित कर लिया गया है। इस समझौते का उद्देश्य कृषि व्यापार में मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करना, मात्रात्मक प्रतिबंधों को प्रशुल्कों से प्रतिस्थापित करना, प्रशुल्कों में कमी करना और घरेलू कृषि व्यापार को अन्य देशों के कृषि निर्यातों के लिए खोलना है। इस समझौते के अंतर्गत तीन बातों पर बल दिया गया है-

1. घरेलू बाजार में प्रवेश की सुगमता 2. घरेलू समर्थन को नियंत्रित करना
3. निर्यात सहायता में कमी करना

कृषि समझौते के अतिरिक्त विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत लागू किए जाने वाले कुछ अन्य समझौतों का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इसमें प्रमुख हैं व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार जिसके अंतर्गत पेटेंट व कापीराइट संरक्षण की व्यवस्था है।

विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौतों के अंतर्गत विकसित देशों ने चालाकी से हरे-नीले-पीले बक्से बना लिए थे और वे अपनी सुविधा के अनुसार इन बक्सों में बदलाव करते रहते हैं। विकसित देश आज भी इन बक्सों के तहत दिए जाने वाले अनुदानों में कमी करने को तैयार नहीं है। कृषि अनुदान कम न करने का मूल कारण यह है कि जिस तरह की आधुनिक, औद्योगिक, रासायनिक खेती विकसित देशों में हो रही है वह

तालिका-3

मुख्य फसलों के उत्पादन क्षेत्र, उत्पादन एवं उत्पादकता की वृद्धि दर

	1981-82 से 1990-91			1991-92 से 2001-02		
फसल	क्षेत्र	उत्पदन	उत्पादकता	क्षेत्र	उत्पदन	उत्पादकता
चावल	0.60	4.20	3.58	0.61	1.92	1.29
गेहूं	0.36	3.39	3.02	0.95	2.84	1.87
मोट अनाज	1.49	0.72	2.42	-1.44	0.66	2.12
दालें	0.09	1.50	1.41	-0.37	0.14	0.50
कुल खाद्यान्न	-0.19	2.99	3.18	-0.03	1.89	1.92
तेल बीज	3.02	5.80	2.70	0.98	0.40	1.38
कपास	-0.97	3.32	4.31	1.86	0.18	-1.65
गन्ना	1.35	2.97	1.61	2.11	2.41	0.31

स्रोत: आर्थिक समीक्षा एवं षि एवं सहकारिता विभाग की वार्षिक रिपोर्ट

बिना विशाल अनुदानों के चल ही नहीं सकती। विकसित देशों में 1986-87 में घरेलू अनुदान 27.6 अरब डालर था, जो कि 1999 में 32.6 अरब डालर तथा 2005 में बढ़कर 350 अरब डालर हो गया। विकसित देश अपने किसानों को प्रतिदिन 5000 करोड़ रुपये 81 अरब डालर का अनुदान देते हैं। फिर खाद्यान्न के निर्यात पर भी अनुदान दिया जाता है। इस खाद्यान्न को गरीब देशों में बेचकर वे वहां के किसानों की रोजी-रोटी छीन रहे हैं। विकसित देश अपने यहां कृषि संबंधी नीतियों की काली छाया विकासशील व गरीब देशों की कृषि पर महसूस की जा रही है। पिछले एक दशक में इन देशों में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ी है। खेती पर खर्च में वृद्धि हुई है। ऋणजाल में फंसे किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाएं घटित हो रही हैं। तथा सामाजिक आर्थिक संकट के नये भंवर देखने को मिल रहे हैं। रोजगार की खोज में गांवों से शहरों की ओर तेजी से पलायन हो रहा है।

भारत जैसे देश में जहां दो तिहाई जनसंख्या 66 करोड़ कृषि पर निर्भर है वहां सस्ते और सब्सिडीयुक्त कृषि आयात से कृषि संकट और बढ़ जाता है। विश्व व्यापार संगठन और क्षेत्रीय व्यापार समझौतों के कारण सस्ते कृषि आयात से घरेलू कीमतों में गिरावट आई है और इससे किसानों की आय घटी। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों से आयातित सस्ते पाम आयल, श्रीलंका से आयातित चाय-काफी और वियतनाम, थाईलैंड व श्रीलंका से आयातित मसालों के कारण भारतीय किसानों का हित दुष्प्रभावित हो रहा है। केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक के चाय, काफी, कालीमिर्च बागान बंद हो रहे हैं। एक दशक पूर्व भारत खाद्य तेल के क्षेत्र में लगभग आत्मनिर्भर था लेकिन आज भारत विश्व का सबसे बड़ा खाद्य तेल आयातक देश बन चुका है। वर्ष 2005 में 3.2 अरब डालर के खाद्य तेलों का आयात किया गया। घटते आयात शुल्क और विदेशों से आयातित खाद्य तेल ने पीली क्रांति की मजबूत संरचना की कमर तोड़ दी। वर्ष 2001-04 के बीच डेयरी उत्पादों के आयात में 371 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मुक्त व्यापार समझौते के कारण मटर, आलू, लहसुन, काजू, खीरे और खजूर का आयात किया जा रहा है जिनकी देश में पहले से ही प्रचुरता है। इसे 1991-2004 के बीच कृषि निर्यात एवं आयात के विवरण से समझा जा सकता है।

कृषि संकट के समाधान हेतु नवीन प्रयास

किसानों की आत्महत्या, कृषि क्षेत्र में व्याप्त गतिहीनता, कृषि उत्पादन में बढ़ती अस्थिरता, किसानों की ऋणग्रस्तता आदि को दूर करने तथा कृषि क्षेत्र में जोखिम कम करने के लिए सरकार ने कई

तालिका-4

कृषि निर्यात एवं आयात का विवरण

वर्ष	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98
निर्यात	17.80	16.84	18.05	15.99	19.18	20.33	19.1
आयात	3.99	9.54	3.18	6.60	4.80	4.76	5.70
वर्ष	**1998-99**	**1999-00**	**2000-01**	**2001-02**	**2002-03**	**2003-04**	**2004-05**
निर्यात	18.25	15.91	14.28	14.19	13.10	12.70	11.20
आयात	8.17	7.45	5.31	6.67	5.77	6.12	4.59

स्रोत: कृषि एवं सहकारिता विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 2005-06

अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उपाय किए हैं इनमें प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं-

राष्ट्रीय कृषि आयोग- कृषि में निवेश को बढ़ावा देने, कृषि में नये प्रयोग करने तथा भारतीय किसानों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के लिए एक कृषि आयोग का गठन किया गया है। यह आयोग विविधीकृत कृषि वृद्धि की आर्थिक व्यवहार्यता और स्थायित्व में सुधार करने के लिए नीति तथा कार्यक्रम सुझायेगा। आयोग कृषि श्रमिकों, ग्रामीण युवकों और भूमिहीन किसानों जैसे विशिष्ट कृषक समूहों की समस्याओं पर भी अपना ध्यान केंद्रित करेगा।

राष्ट्रीय सहकारी नीति- सभी सहकारी समितियों के समग्र विकास को प्रभावी बनाने और सहकारी संस्थाओं को स्वायत्त, स्वावलंबी व लोकतांत्रिक रूप से प्रबंधित संस्थाओं के रूप में विकसित करने हेतु राष्ट्रीय सहकारी नीति बनाई गई है।

पूर्वी भारत में फसलोत्पादन बढ़ाने के लिए खेती पर जल प्रबंधन- देश के पूर्वी और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में प्रचुर भूमिगत/सतही जल संसाधनों की संभावनाओं का दोहन करने के लिए वर्ष 2002 में पूर्वी भारत में फसलोत्पादन बढ़ाने के लिए खेत पर जल प्रबंध योजना शुरू की गई। योजना का बल विभिन्न फसलों के उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने, किसानों की आय बढ़ाने और गहन तथा विविधीकृत उत्पादन प्रणाली को बढ़ावा देने पर है। यह योजना उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़, असम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम राज्यों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के 35 पूर्वी जिलों तथा पश्चिम बंगाल के 9 जिलों में क्रियान्वित की जा रही है। योजना का क्रियान्वयन राज्य सरकारों के सहयोग से नाबार्ड के माध्यम से किया जा रहा है।

पूर्वोत्तर हेतु बागवानी मिशन- पूर्वोत्तर क्षेत्र में बागवानी के समेकित विकास के लिए 2001-02 के दौरान प्रौद्योगिकी मिशन शुरू किया गया। यह योजना बागवानी विकास से संबंधित सभी मामलो का समाधान करती है। अब जम्मू-कश्मीर, उत्तरांचल व हिमाचल प्रदेश को भी बागवानी मिशन में शामिल कर लिया गया है।

राष्ट्रीय बागवानी मिशन- अनुसंधान, उत्पादन, कटाई पश्चात् प्रबंधन, प्रसंस्करण और विपणन को सम्मिलित करते हुए मई, 2005 में राष्ट्रीय बागवानी मिशन की केंद्रीय प्रायोजित योजना शुरू की गई है। इसके मुख उद्देश्य है दस वर्षों में बागवानी उत्पादन दुगुना करना, निर्यात बढ़ाना, किसानों की आय बढ़ाना एवं बागवानी उत्पाद की खेती में वृद्धि को प्रोत्साहित करना।

ऋण प्रवाह में वृद्धि- कृषि और संबंधित कार्यकलापो के लिए कुल ऋण प्रवाह 1998-99 में 36,860 करोड़ रुपये था जिसे 2003-04 में बढाकर 86981 करोड़ कर दिया गया। 2004-05 के लिए कृषि ऋण प्रवाह का लक्ष्य 1,25,309 करोड़ रुपये निर्धारित किया गया है। भारत सरकार ने कृषि उत्पादन और निवेश बढ़ाने के लिए 18 जून, 2004 को फार्म ऋण पैकेज की घोषणा की जिसमें तीन वर्षों में कृषि ऋण प्रवाह को दो गुना करना तथा प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित किसानों को ऋण राहत का प्रावधान है।

कम ब्याज दर पर कृषि ऋण- किसानों को काम ब्याजदर पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार ने सभी बैंकों को सलाह दी है कि वे 5000 रुपये तक के कृषि ऋणों पर एक अंक की ब्याज दर लें जो कि 9 प्रतिशत वार्षिक से अधिक न हो। बैंक यह भी सुनिश्चित करें कि ब्याज दर में कमी के कारण कृषि क्षेत्र के लिए ऋण की मात्रा कम न हो। इसके अतिरिक्त बैंक 2 लाख रुपये तक के ऋणों के लिए ब्याज दर बैंक की प्राइम लेंडिग रेट से अधिक नहीं होना चाहिए।

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना- इस योजना की शुरूआत 1999-2000 से की गई। इसका उद्देश्य सूखा, बाढ, ओलावृष्टि, चक्रवात, कृमियां और रोगों जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुई फसल क्षति के लिए सभी किसानों की रक्षा करना है। इस योजना में उन सभी खाद्य और वाणिज्यिक/बागवानी फसलों को सम्मिलित किया गया है जिनके उपज संबंधी आंकड़ें उपलब्ध हैं।

मोटे अनाज पर बल- देश के खाद्यान्न उत्पादन को स्थिर करने में मोटे अनाज की महत्वपूर्ण भूमिका है। खाद्यान्नों के अंतर्गत मोटे अनाजों का क्षेत्र 24.8 प्रतिशत है और देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में इनका योगदान 18.9 प्रतिशत होता है। पिछले चार दशकों में मोटे अनाजों के अधीन क्षेत्र में कमी आई है। 1965-66 के दौरान कुल खाद्यान्न में मोटे अनाज का भाग 29.6 प्रतिशत था जो कि 2003-04 के दौरान 17.8 प्रतिशत तक गिर गया। 2003-04 के दौरान मोटे अनाजों को 30.76 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में उगाया गया जिसमें 38.12 मिलियन टन उत्पादन हुआ। 2005-06 के दौरान 34.00 मिलियन टन उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया है जो कि 2004-05 के उत्पादन द्ध33.94ऋ से थोड़ा अधिक है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने हाल में तथाकथित मोटे अनाजों (कोदो, सोरगम, कुत्थी, बाजरा, रागी आदि) की किस्मों के विकास की नयी योजना शुरू की है। पौष्टिकता की दृष्टि से ये अनाज गेहूं और चावल से किंचित मात्र भी कम नहीं है और सस्ते भी हैं। इनके उत्पादन से जहां गरीबों को सस्ते दर पर अनाज उपलब्ध होगा वहीं कुपोषण की समस्या भी दूर हो जाएगी। इसकी उपज ऐसे क्षेत्रों में होती है जहां कृषिगत बुनियादी ढांचे की कमी है। मोटे अनाज के उत्पादन में वृद्धि होने से हरित क्रांति के क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने में भी प्रभावी सफलता मिलेगी।

कृषि आय बीमा योजना- इस योजना में उपज और मूल्यों में गिरावट के लिए किसानों को आय संरक्षण देने का प्रावधान है। यदि किसानों को वास्तविक आय गारंटीशुदा आय से कम हो जाती है तो वे भारतीय कृषि बीमा कंपनी से इंडेम्निटी की सीमा तक क्षतिपूर्ति के हकदार होंगे। रबी 2003-04 से प्रारंभ इस योजना में धान तथा गेहूं को शामिल किया गया है। आरंभ में इसे 13 राज्यों के 21 जिलों में पायलट आधार पर क्रियान्वित किया जा रहा है।

कृषि प्रसार कार्यक्रम

कृषि क्षेत्र में शोध कार्य निरंतर चलते रहते हैं। इन शोधों को किसानों तक पहुंचाने के लिए अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार का काफी महत्व है। प्रयोगशाला से भूमि तक की कड़ी को सुदृढ़ करने के लिए निम्न योजनाएं शुरू की गई हैं-

किसान काल केंद्र- यह योजना 21 जनवरी, 2004 से शुरू की गई। इसका उद्देश्य नि:शुल्क टेलीफोन संख्या 1515 के द्वारा किसानों को आन लाइन सूचना देना है। इसमें 116 किसान काल केंद्र एजेंट 21 स्थानीय भाषाओं में पूरे देश में किसानों के प्रश्नों का उत्तर सप्ताह में सभी दिन प्रात: 6 बजे से रात्रि दस बजे तक दे रहे हैं।

कृषि स्नातकों द्वारा कृषि क्लीनिक और कृषि व्यवसाय केंद्र की स्थापना- यह योजना 2001-02 से शुरू की गई। इसका लक्ष्य योग्य कृषि स्नातकों हेतु स्वरोजगार सुविधा में वृद्धि करना एवं आर्थिक रूप से व्यवहार्य उद्यमों के जरिए कृषि विकास में समर्थन देना है।

विस्तार सुधारों हेतु राज्य विस्तार कार्यक्रम को समर्थन- यह केंद्रीय योजना मार्च, 2005 में अनुमोदित की गई। इसका उद्देश्य किसानों, विषय विशेषज्ञों, गैर-सरकारी संगठनों, कृषि विज्ञान केंद्रों आदि की सक्रिय सहभागिता से विकेंद्रित और मांग अनुकूल विस्तार सेवा प्रदान करना है।

इसके अतिरिक्त कई अन्य योजनाएं भी शुरू की गई हैं जैसे बीज, फसल बीमा योजना, ग्रामीण भण्डारण योजना, कृषि विपणन के लिए आधारभूत ढांचे का विकास, त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम, लघु सिंचाई योजनाओं को प्रोत्साहन देना, न्यूनतम समर्थन मूल्य को तर्कसंगत बनाना, समस्याग्रस्त क्षेत्रों में कृषि विकास हेतु समय-समय पर विशेष पैकेज घोषित करना आदि।

कृषि संकट को दूर करने के उपर्युक्त प्रयासों को सीमित सफलता मिली है। इसका कारण है कि कृषि संकट के जो दो आधारभूत कारण ब्द्धआधुनिक तकनीक और बाजारऋ हैं उनके समाधान का कोई प्रभावी उपाय नहीं किया गया है। आधुनिक तकनीक विविधता की दुश्मन और विशिष्टीकरण की पूजक है। पहले कृषि और ग्रामीण जीवन में विविधता थी। किसान मिश्रित फसलें बोता था एक फसल की सैकड़ों किस्में विद्यमान थीं। किसान खेती के साथ-साथ पशुपालन, मुर्गीपालन, दुग्ध उत्पादन, मधुमक्खी-मछली पालन आदि कार्य करते थे। ये गतिविधियां एक दूसरे की पूरक थीं। इनसे किसानों को परंपरागत सुरक्षा मिलती थी। कृषि की आधुनिक तकनीक से प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता में भी कमी आई। संयुक्त परिवार टूटने से भी सुरक्षा कम हुई।

कृषि संकट का दूसरा बड़ा कारण बाजार है। वैश्वीकरण के इस युग में कृषि बाजार भी अंतरराष्ट्रीय स्वरूप धारण कर लिया है। फलत: उपज की कीमतों तेजी से उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। प्राय: जब किसान की फसल बाजार में आती है तो मंडियों में भाव गिर जाते है और बाद में कई गुना तक बढ़ जाते हैं। उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ के जिस टमाटर को जनवरी-फरवरी, 2006 में 25 पैसे प्रति किग्रा खरीददार नहीं मिल रहे थे वही टमाटर दिल्ली में जुन-जुलाई, 2006 हमें 35-40 रुपये प्रति किग्राम तक बिका। इस उतार-चढ़ाव का लाभ बिचौलिये, व्यापारियों, जमाखोरों, सट्टेबाजों को होता है। व्यापारी और बिचौलिए बाजार के दोनों सिरों पर शोषण करते हैं- उपभोक्ता का भी और किसानों का भी। बाजार के इस मारक शोषण से करोड़ों किसानों को बचाने के लिए सरकार को बाजार में सक्रिय हस्तक्षेप करना होगा।

रणनीति

कृषि जोखिम कम करने के लिए आज नयी रणनीति की आवश्यकता है। इसके लिए हमें प्रासंगिक, परंपरागत विधियों एवं नयी तकनीक में सामंजस्य स्थापित करना होगा। ये तकनीके ऐसी हों जिनसे पर्यावरण की क्षति पहुंचाए बिना अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके। इसके लिए भूमि, जल, ऊर्जा, पोषक तत्व, आनुवंशिक विविधता, कीट प्रबंध, कटाई के बाद की प्रणालियां, जैविक खेती एवं कृषि वानिकी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कृषि कार्य को विविधतापूर्ण बनाया जाय। अत: मोटे अनाज, दलहन, तिलहन की खेती और फल, वनस्पति, फूल, डेयरी, मत्स्यपालन, कुक्कुट पालन को प्रोत्साहन प्रदान करना आवश्यक है। कृषि के साथ ही ग्रामीण भंडार गृहों के निर्माण, मार्केटिंग, अनुसंधान एवं सर्वेक्षण, मार्केटिंग सूचना नेटवर्क जैसी कृषि विपणन योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए फसल बीमा, बंजर भूमि विकास, गिरते भूजल स्तर को रोकना होगा। कृषि राज्य सरकारों का विषय है और केंद्र की भूमिका उत्प्रेरक की है, अत: कृषि के सर्वांगीण विकास हेतु केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग आवश्यक है।

सरकार को चाहिए कि वह व्यापक स्तर पर मिट्टी की जांच कराए, उसके लिए क्षेत्रीय आधार पर फसल सुझाए और किसानों को आर्थिक निर्भरता के बारे में जानकारी दे। किसानों को उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक, और कीटनाशक दवाओं को भी सस्ती दर पर उपलब्ध कराना होगा। सरकार को सुदृढ़ कानून व्यवस्था, सूचना प्रौद्योगिकी तथा कृषि उत्पादों के बेचने का प्रबंध करना चाहिए। किसानों को देश के साथ-साथ विश्व की प्रमुख मंडियों में कृषि उत्पादों के भाव पता हो ताकि वे अपने फसल प्रणाली में समयानुरूप परिवर्तन कर सके और अपनी उपज को इच्छानुसार किसी भी बाजार में बेच सकें। उदाहरणार्थ हिमाचल प्रदेश में विश्व स्तर का शहद उत्पादन होता है लेकिन वहां के छोटे-छोटे मधुमक्खी पालकों के पास संसाधन नहीं होने के कारण उसे वे विश्व बाजर में नहीं बेच पाते। किसानों को ग्राहकों की मांग के अनुरूप अपनी उपज का प्रसंस्करण करने में विशेषज्ञता हासिल होनी चाहिए। इससे जहां एक ओर ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या दूर होगी वहीं दूसरी ओर कृषि उत्पादों का भी सार्थक उपयोग हो सकेगा।

समग्रत: खेती भारत का आधारभूत पारंपरिक उद्योग है जिसकी क्षमताओं, संभावनाओं का पूरा उपयोग नहीं हो पाया है। न केवल किसानों की आत्महत्या रोकने अपितु गरीबी निवारण, असमानता दूर करने, किसानों की आय बढ़ाने, पर्यावरण संरक्षण हेतु भी भारतीय कृषि को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालना होगा।

(लेखक खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग से सम्बद्ध है)

कृषि क्षेत्र में उभरती चुनौतियां

पी ए शेषन

खाद्य मोर्चे पर और सही मायने में कृषि क्षेत्र में नई चुनौतियों का सामना करना होगा। आरंभ में किए गए एक आकलन से पता चला था कि देश ने खाद्य के मामले में पूरी सुरक्षा प्राप्त कर ली थी और 20 करोड़ टन से भी अधिक की अनाज की पैदावार के लिए वसूली का गहन कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता होगी और इतना ही नहीं बफर स्टॉक में होने वाली अनियंत्रित वृद्धि को संभालने के लिए निर्यात की तेज़ मुहिम चलानी होगी। लेकिन पिछले दो सालों में स्थिति पूरी तरह से बदल गई है।

2004-05 में भी कृषि मंत्रालय ने भारी मात्रा में चावल, गेहूं और दूसरे अनाज के निर्यात के बारे में गम्भीरता से विचार किया था। उस साल 8,866 करोड़ रुपए मूल्य के अनाज का निर्यात किया गया था, जबकि पिछले साल यह निर्यात 6,957 करोड़ रुपए का था, जिसमें चावल का निर्यात 6,642 करोड़ रुपए का था (4,168 करोड़ रुपए) और दूसरे अनाज का निर्यात 777 करोड़ रुपए का था (4,168 करोड़ रुपए)। काम के बदले अनाज कार्यक्रम के तहत अनाज की काफी उठवाली और गरीबी की रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले लोगों को काफी बड़ी मात्रा में बिक्री के कारण मई 2006 में अनाज का बफर स्टॉक 218.2 लाख टन से भी कम हो गया था, जो आधार-स्तर से भी कम था। बफर स्टॉक में सबसे अधिक मात्रा 630 लाख टन की थी, जो जुलाई में थी।

अनाज भंडार में यह कमी 2005-06 में 20.83 करोड़ टन की बम्पर फसल के दौरान भी हुई थी यह आंकड़ा 2003-04 के 9.1 करोड़ टन कुल पैदावार में से 2.79 करोड़ टन चावल की सरकारी खरीद, 8.31 करोड़ टन की चावल की कुल पैदावार में से 2.468 करोड़ टन की खरीद की तुलना में काफी सतोषजनक था। गेहूं की सरकारी खरीद काफी कम थी। 1.68 करोड़ टन की तुलना में यह 1. 479 करोड़ टन थी। पिछले सीज़न की 6.86 करोड़ टन की पैदावार के मुकाबले 6.95 करोड़ टन की पैदावार थोड़ी से ही अधिक थी। गेहूं के भंडार के न्यूनतम स्तर से नीचे चले जाने और उचित दर वाली दुकानों से तथा अन्य कार्यक्रमों के लिए, गेहूं के स्थान पर चावल तथा दूसरे अनाज के बेचने के कारण शुरू में 35 लाख टन गेहूं का आयात करना ज़रूरी हो गया था और बाद में 20 टन गेहूं का और निर्यात करना पड़ा था। साथ ही व्यापारियों को भी इस साल के अंत तक अनाज के शुल्क मुक्त आयात की अनुमति दी गई थी। आयातित गेहूं की नियमित आवक से सरकार को कठिन स्थिति से उबरने में मदद मिल सकती है। चालू सीज़न के लिए फसल के अनुमानों में व्यापक अंतर हो सकते हैं। आशंका व्यक्त की जा रही है कि अनुमानित 21.25 करोड़ टन के मुकाबले चावल और मोटे अनाज की पैदावार में कमी हो सकती है, हालांकि उम्मीद यह है कि गेहूं की पैदावार अभी भी 730 लाख टन के आसपास बनी रहेगी। इसमें कोई शक नहीं कि साल के शुरू से ही चावल की सरकारी खरीद में तेज़ी रही है क्योंकि अधिक समर्थन मूल्य के ऊपर भी 40 रुपए प्रति टन के बोनस से सरकारी खरीद एजेंसियों को पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अनाज की खरीद में मदद मिली है।

राजस्थान, मध्य प्रदेश और अन्य राज्यों में रबी के दौरान दलहन की फसल अच्छी होगी। तिलहनों की पैदावार के भी पहले के अनुमानों के अनुसार न रहने की संभावना है और दलहनों की अभी भी कमी रहेगी, इसलिए खाद्य तेलों और दलहनों का आयात जारी रखना पड़ सकता है।

योजना आयोग और यूपीए सरकार का मानना है कि खेतिहर उत्पादन में चार प्रतिशत सालाना की दर से वृद्धि करनी होगी और वर्षा सिंचित इलाकों की और यहां तक कि सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों की भी कमजोरियों को दूर करना होगा, जिसके लिए निवेश बढ़ाना होगा। फसल प्रणाली में भी उचित संशोधन करने होंगे।

साथ ही गन्ने और कपास की पैदावार बढ़ानी होगी तथा कृषि-आधारित उद्योगों को नए सिरे से महत्व देना होगा। रिफाइंड चीनी के उत्पादन को दस लाख टन सालाना के हिसाब से बढ़ाना होगा, इसके साथ ही अल्कोहल के उत्पाद में ईथनोल का हिस्सा भी बढ़ना पड़ सकता है।

एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाली समिति ने पैदावार बढ़ाने, सस्ते और पर्याप्त मात्रा में ऋण उपलब्ध करा कर, सिंचाई, सुविधाओं को मजबूत बनाने और वर्षा सिचिंत क्षेत्रों के विकास की ज़रूरत पर भी जोर दिया है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना होगा। प्राथमिक उत्पादों के आयात पर विदेशी मुद्रा की बर्बादी को रोकना भी ज़रूरी है क्योंकि खेती पर नए सिरे से ध्यान देकर पर्याप्त मात्रा में घरेलू सप्लाई सुनिश्चित की जा सकती है। कच्चे तेल और पेट्रो उत्पादों के बढ़ते आयातों को मद्देनज़र रखते हुए समस्या का यह पहले और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि घरेलू उत्पादन में बराबर की वृद्धि न हो पाने की स्थिति में आयात पर निर्भर रहना ही पड़ेगा।

शेष पृष्ठ 47 पर...

दम तोड़ती ज़िंदगी का सच

कन्हैया त्रिपाठी

महात्मा गांधी का स्वप्न था- प्रत्येक की भूख मिटाना और इसी के साथ वे सर्वोदय के भी हिमायती थे किंतु विडम्बना यह है कि आज़ादी के लगभग छः दशक बाद भी भारत का एक बड़ा हिस्सा भूख और गरीबी के कारण दम तोड़ रहा है। देश के 31 जिलों में किसान आत्महत्या कर रहे हैं। तंग व बदहाल जिंदगी का सच देखना हो तो इन किसानों की जिंदगी को कोई भी देख सकता है। केरल, पंजाब, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के किसान पूरी तरह से संकट में है। त्रासदरूप में आत्महत्या की समस्या का सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र है। यहां प्रत्येक 24 घंटे में तीन किसान आत्महत्या कर लेता है। 21वीं सदी का किसान इतनी तबाह जिंदगी को स्वीकार करने पर विवश होगा इसकी किसी ने कल्पना भी न की होगी। यह उस देश के किसान हैं जो कृषि प्रधान देश के नाम से जाना जाता है। यह उसी देश के किसान हैं जो 2020 तक विकसित भारत का स्वप्न सजोकर बेहतर भविष्य की संकल्पता के साथ आगे बढ़ने का दावा भी कर रहा है किंतु दम तोड़ती ज़िंदगी का सच और इससे उपजे सवालात भारत को कई स्तर पर अब मापना-तोलना शुरू कर दिया है।

यह सवाल जो किसान आत्महत्या के संदर्भ में उभरकर सामने आ रहे हैं वह भी कई सवालों को जन्म दे रहे हैं इस प्रकार सवालों की गुत्थियां सुलझाने में ही सारी ऊर्जा व्यय हो रही है और मसला ज्यों का त्यों बना हुआ है। किसान रोज मर रहे हैं। वन्दना शिवा ने इन किसान आत्महत्या को आत्महत्या न कहकर "किसानों का आत्मसंघर्ष" का नाम दिया है। बड़ी-बड़ी बातों से कभी हालात सुधरते हैं इसे भी सोचना होगा। जो भी हो, सच्चाई जो है वह किसानों के साथ है। जो किसान जूझ रहे हैं या जो किसान आत्महत्या कर लिए उसके परिवारजन जो संघर्ष कर रहे हैं उनकी आत्मा से अगर पूछा जाए तो सच्चाई वही बता सकते हैं कि आखिर किन कारणों से वे आत्महत्या कर रास्ता चुनते हैं।

विदर्भ के एक गांव दहेगांव मुस्तफा का रूपराव नत्थूजी उरुकुडे (उम्रः 35 वर्ष) ने आत्महत्या केवल इसलिए कर लिया क्योंकि उसने अपने खेत में कपास लगायी। प्रकृति के साथ न देने पर उसे फिर से बीज खेत में डालना था उसके पास पैसे नहीं थे। पहली बार जब वह खेत में बीज डाला था तभी 11 हजार का कर्ज़ ले रखा था दुबारा उसे कर्ज़ बैंक वले नहीं देने को राजी थे और साहूकारों की मनमानी को देखते हुए उस पर प्रतिबंध लगा दिया है। पूरी तरह से निराश रूपराव ने जब सारे लोग घर से निकल गए। बच्चे पढ़ने चले गए और पत्नी मजदूरी पर तब रुपराव ने ज़हर पीकर आत्महत्या कर लिया। उसके पास दो छोटे बच्चे हैं (अविनाश (10 वर्ष) तथा प्रज्ज्वल (7 वर्ष))। पत्नी मजदूरी करती थी और वह खुद अपनी खेती व मजदूरी के बल पर गुजर-बसर करता था लेकिन अब वह बीच में ही साथ छोड़ चला। रूपराव के आत्महत्या के बाद अब इस परिवार के लिए सहारा नहीं है कोई।

वर्धा जिले के एक परिवार में दो-दो आत्महत्याएं हुई। बाप की परेशानी व घर में जवान बहनों की शादी से चिंतित होकर पहले बेटे ने फांसी खेत में लगा ली और फिर बाप ने सोचा कि मेरा व मेरे जीवन का क्या प्रयोजन है अब उसने भी ज़हर पीकर आत्महत्या कर ली। एक साथ एक ही परिवार के दो-दो लोगों ने आत्महत्या कर ली और दोनों की लाश एक साथ धू-धू करके जल उठी।

वर्धा जिले का लोनसांवणी गांव का परशुराम गुणे ने बैंक के कर्ज़ न मिलने से आत्महत्या कर ली और आत्महत्या करने वाले किसानों की लिस्ट में जुड़ गया। उसके ऊपर 75 हजार पहले से कर्ज था अब बैंक वालों ने उसे नोड्यूज के लिए परेशान किया और उसने आत्महत्या कर ली। 59 वर्षीय परशुराम गुणे कई दिनों से चिंताग्रस्त था कि यदि कर्ज़ नहीं मिला तो वह खेतों में बीज कैसे डालेगा। उसके परिवार में पांच सदस्य हैं।

विगत जुलाई 1, 2006 को प्रधानमंत्री जी जब विदर्भ दौरे पर थे तो वह परशुराम गुणे की विधवा से मिले और उसकी व्यथा को उन्होंने सुना लेकिन वह क्या रंगत लाया इस संदर्भ में कुछ भी कहना ठीक नहीं है। प्रधानमंत्रीजी के जाने से पूर्व उसे एक लाख सरकारी मोहकमा चैतन्य था लेकिन उसके दिल्ली वापसी के बाद उसकी जिदंगी से किसी का क्या वास्ता रहा। सरकार जिनके सहारे सारे योजनाओं को क्रियान्वयन की बात करती है खामी वहीं हैं इससे साफ झलकता है। प्रधानमंत्री जी ने विदर्भ के किसानों की बदहाली से उबरने के लिए साढ़े सात हजार करोड़ का पैकेज दिया लेकिन कौन लाभान्वित हुआ इसका दृष्टांत देना थोड़ा मुश्किल है। जिनको लाभ मिलना चाहिए वे आज के बजाय मुसीबतों के शिकार जरूर हुए और सारा धन जो केंद्र व राज्य सरकार ने भेजा उसका लाभ कोई बताने को तैयार नहीं सच्चाई यही है ऐसे में हर दृष्टि से मार झेलते किसान की जिदंगी बिल्कुल सुनामी में समाप्त होना कुबूल (शौक से) करने को तैयार है लेकिन घुट-घुटकर मरना इनके जीवन का अब मकसद बिल्कुल नहीं रहा।

ऐसा नहीं कि आत्महत्या के इतने ही पहलू है बल्कि मामले यह भी प्रकाश में आए हैं कि विदर्भ के किसानों में जागरूकता का अभाव है। उनमें अपनी खुशहाल जिदंगी के लिए कोई तजुर्बा नहीं है जिससे वे आत्महत्या कर रहे हैं। कुछ ने नशाखोरी के कारण आत्महत्या कर ली और मीडिया ने सुर्खियों में आत्महत्या की खबर छाप दी गयी। इसी क्षेत्र में एक गांव डोर्ली है जहां एक भी लोगों ने आत्महत्या नहीं की। यहां के लोगों ने पिछले वर्ष एक इस्तेहार दिया कि हम सभी खेत, जानवर, बच्चे व बूढ़े सभी बिका चाहते हैं 'मुझे खरीदोगे'। 'हे गांव विकले आहे' यह गांव के हर घर पर लिखा हुआ (बैनर पर या दीवार पर) नारा मिल जाएगा। यहां के किसान कहते हैं कि हम मरना नहीं चाहते हैं हम जीना चाहते हैं। यहां की ग्राम पंचायत सदस्या सुजाता हलूले ने कहा कि गरीबी रेखा का कार्ड भी हमें नहीं मिला। खेती करते हैं तो उसका सही मूल्य भी नहीं मिला और हमारे बच्चे पढ़ाई भी सही ढंग से इस तबाह जिदंगी के कारण नहीं कर पाते ऐसे में हम सभी बिकना चाहते हैं और सारा कुछ बेचकर शहर में जाकर गुजारा करेंगे।

किसानों की यह दशा व उनकी पीड़ा केवल कहानी नहीं हकीकत हैं। किसान आत्महत्या केवल मामले सुधारते तो मान्यता भी हमारी बनती कि इस समस्या से सरकार को जगाने का एक सशक्त माध्यम है किसान आत्महत्या करें लेकिन सभी जानते हैं कि यदि कोई विकल्प नहीं। ऐसे में किसान को सही रास्ते मिले व उनकी जिदंगी में पुन: खुशहाली आए ऐसे वातावरण का निर्माण जरूरी हो गया है क्योंकि किसान यह नहीं समझाता कि वर्ल्ड ट्रेड अर्गनाइजेशन, वर्ल्ड मार्केट और वर्ल्ड इकोनॉमी क्या है और उससे वह प्रभावित है। क्या पॉलिसीज बन रही हैं और कैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियां उन्हें अपनी गिरफ्त में करती जा रही हैं उसकी पेंच को वह नहीं जानता क्योंकि भारत का किसान आज भी सरल व सहज है। यही कारण है कि भारत का किसान आत्महत्या कर रहा है। उसकी मासूमियत को बरकरार रखने की जिम्मेवारी राज्य की होती है जिस पर पूरा का पूरा किसान वर्ग विश्वास करता है। उसे यह विश्वास है कि हमारी सारे समस्याओं का निराकरण हमारी सरकारों के पास है और वह मेरी रक्षा व मुनाफा की व्यवस्था करेगी लेकिन कहीं न कहीं यह विश्वास टूटा है जिसका परिणाम है- आत्महत्या। आत्महत्याओं की बनती श्रृंखलाओं को हमें तोड़ने के लिए क्या तरकीबें ईजाद करने हैं इस पर केंद्रित होना आज की महती आवश्यकता है क्योंकि आत्महत्याओं की फेहरिस्त में इजाफा हुआ है। जून 2005 से अक्तूबर 2006 तक ग्यारह सौ से अधिक किसान केवल विदर्भ क्षेत्र में आत्महत्या किए हैं। जाहिर सी बात है कि एक हजार से अधिक महिलाएं एक वर्ष के भीतर विधवा हुई हैं और बहुत से बच्चे बेसहारा हो गए हैं। उनके शिक्षा की व्यवस्था व उनके जीवन की आगे बढ़ने की रफ्तार अवरोधित हो गयी है। उनके खेत में फसले उगाने वाले अभिभावक नहीं हैं और उनको दो जून का भोजन देने वाले रोग नहीं रहे। बहुत सी जवान बहने हैं जिनसे समाज या तो बुरी खयालातों के गिरफ्त में आकर तरह-तरह के यातनाओं की अभद्रता कर रहा है या उनके शादी के लिए हुण्डा पद्धति (दहेज) के तहत बड़ी रकम की अपेक्षा कर रहा है। जिन विधवा के पास दो-दो जवान लड़कियां हैं उनकी नींदे हराम हैं। सहारा नाम की कोई चीज नहीं और चिताएं सौ तरह की। किसान व किसान परिजन की दुर्दशा का कोई अंत नहीं। उसमें सबसे ज्यादा प्रभावित हैं स्त्रियां और बच्चे। सेकण्डरी उद्योग का अभाव, पानी की समुचित व्यवस्था का अभाव तथा लागत के भी बराबर फसलों की कीमत नहीं और इसके अलावा हरेक साल कर्ज़ से दोस्ती से खेती पानी बढ़ता कर्ज़ का बोझ किसानों की जिदंगी को बिल्कुल झकझोर दिया है।

सरकार ने जो कुछ किया उसकी कोई भी गिनती नहीं क्योंकि किसान प्रतिदिन आत्महत्या कर रहे हैं ऐसे मे क्या दम तोड़ती जिदंगी का सच केवल किसान आत्महत्या है ऐसा मान लिया जाए यह भी कम होगा क्योंकि जो मर रहा है वह तो मर गया जो बच्चे, स्त्री, विधवाएं पल-पल घुट-घुट मर रहे हैं उसे गंभीरता से सोचने की जरूरत है क्योंकि जो जिंदा है उनकी जीवित मौतें और दर्दनाक हैं। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि इससे हम सभी विकल्पों की तलाश करना बंद कर दें क्योंकि यह हमारी नासमझी का उदाहरण होगा। हमें विकल्प मिलजुलकर पूरी रणनीतियां तैयार करके ढूंढना होगा। इसमें कुछ पल हम चलें कुछ पल, कुछ दूर आप क्योंकि यह समस्या सामूहिक चेतना से समाप्त होगी न कि किसी एक तंत्र के प्रयास से। सरकार समाज व किसान सबको उत्कर्ष के लिए कार्य करना जरूरी है और उसमें सबका समान सहभाग अनिवार्य है क्योंकि यदि हम मिलकर रास्ता ढूढ़ेगें तो निश्चित रूप से कोई न कोई विकल्प मिल जाएगा आज इसी की आवश्यकता है। अत: आइए, आशा की किरण की तलाश करे।

'अंधेरे को हम क्यों धिक्कारें, अच्छा हो इक दिया जला लें।'

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा से संबद्ध हैं)

पृष्ठ 45 का शेष

चालू खाता घाटे को बढ़ती हुई शुद्ध अदृश्य प्राप्तियों से फायदा पहुंच सकता है फिर भी ऐसी ही रणनीतियों से घाटे से बचा जा सकता है 2005 -06 में सकल घरेलू उत्पाद में 2004-05 में 7.5 प्रतिशत की वृद्धि की तुलना में 8.4 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई थी और चालू वर्ष में इसके आठ प्रतिशत होने की संभावना है। अगर यही वृद्धि दर बनी रहती है तो जैसा कि पहले बताया गया है, खेती के क्षेत्र में चार प्रतिशत सालाना की वृद्धि बनाए रखनी होगी।

अनाज और अन्य प्राथमिक उत्पादों की खपत में निरंतर वृद्धि के कारण घरेलू उपलब्धता के पर्याप्त न हो पाने की वजह से मुद्रास्फीतिकारी दबावों में वृद्धि हो सकती है। योजना आयोग ने माना है कि 11वीं योजना में खेती की पैदावार बढ़ाने और तयशुदा फसलों की पैदावार को अधिकतम करने के लिए फसल प्रणाली में विविधता लाने के लिए भारी निवेश पर जोर देना होगा।

(ग्रासरूट)

किसानों के कर्जे और आत्महत्याएं

निर्मल संधू

ऋण नीति की अपनी हाल की समीक्षा में भारतीय रिज़र्व बैंक ने किसानों के कर्ज को एक बार में निपटाने की सलाह दी है। कदम तो अच्छा है बशर्ते कि वास्तविक ज़रूरतमंदों को फायदा हो। लेकिन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार ऐसी रियायतों को आसानी से नीचे तक पहुंचने नहीं देता है। एकमुश्त निपटान उत्साही उद्योगपतियों के लिए वरदान साबित हुआ है, जो पहले तो अपनी इकाई को बीमार बना देते हैं और फिर कर्जे का आंशिक भुगतान करके मज़े से बच कर निकल जाते हैं। ऐसे मामलों में सरकारी बैंक मैनेजरों का रवैया काफी मददगार और सहानुभूतिपूर्ण होता है और वे नासमझों को रास्ता भी बता देते हैं।

किसान सिर्फ गरीबी से आत्महत्या नहीं करता है। अक्सर नाकामी की भावना, इज्ज़त पर बट्टा लगने के डर से या घरेलू तनाव से भी लोगों को यह आखिरी कदम उठाने पर मजबूर होना पड़ जाता है। बिहार, उत्तर प्रदेश और यहां तक कि पंजाब के भी परेशान किसान इस आसान रास्ते को नहीं अपनाते हैं। समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों को इस मसले पर गहराई से गौर करना होगा। और फिर, आत्महत्याओं के कारणों पर वैज्ञानिक ढंग से गौर भी नहीं किया जाता है। मीडिया, खासकर टीवी के खूबसूरत नौजवान मीडिया वाले भी अक्सर फटाफट इस नतीजे पर पहुंच जाते हैं कि अगर आत्महत्या करने वाला किसान है तो तय बात है कि आत्महत्या कर्जे के कारण ही हुई होगी। डेडलाइन के तनाव को झेलते हुए एक रिपोर्टर के पास किसी विशेषज्ञ से संपर्क करने का न तो वक्त होता है और न ही धीरज और उनमें किसी आत्महत्या के बारे में नतीजे पर पहुंचने से पहले उसके बारे में गौर करने की काबिलियत भी नहीं होती है।

केंद्रीय कृषि सचिव सिंह राधा का कहना है कि पिछले 10 सालों में की गई आत्महत्याओं के रिकार्ड पर गौर करने से पता चलता है कि किसी भी साल भारत के गांवों में आत्महत्याओं की संख्या 16 प्रतिशत से अधिक नहीं रही है।

कर्ज तो किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर करने का एक कारण है। किसान कर्जा क्यों लेते हैं? पंजाब में आमतौर पर किसान कर्ज लेकर ट्रैक्टर खरीदते हैं जबकि उनके खेत इतने छोटे होते हें कि ट्रैक्टर की उन्हें ज़रूरत ही नहीं होती या फिर वे धूर्त दलालों के चक्कर में पड़ कर अपने बेटे को विदेश भेजने, या ठाठ-बाट से शादी-ब्याह करने या विवाह के मौके पर तड़क-भड़क वाला समारोह करने के लिए कर्ज लेते हैं।

उपभोक्तावाद ने सामाजिक तनावों को और बढ़ा दिया है। सामाजिक दबाव में आकर लोग गैर-जरूरी चीज़े खरीद लेते हैं। गांव में रहने वाला भारतीय भी अपने शहरी भाई-बंधु की तरह ऊंचा उड़ता हैं दुनियावी सफलता की कीमत तो चुकानी ही पड़ती हैं चादर से बाहर पैर पसारने से परेशानियां तो आंएगी ही।

प्रगति की लहर दूर-दराज रहने वाले अलग-थलग पड़े भारतीय तक नहीं पहुंची हैं उसे अभी भी साफ पानी, शिक्षा और चिकित्सा सुविधाओं जैसी बुनियादी सुविधाएं नहीं मिल पाई हैं। भूमिहीनों और अकुशल लोगों के सामने कोई रास्ता नहीं है और संकट से उबरने के लिए उनके पास कोई सहारा भी नहीं है।

खेती अब एक व्यापार बन गई है और इसे ऐसे ही करना होगा। जो छोटा किसान अपनी लागत नहीं घटा सकता है, वह बीजों और खेती के यंत्रों का खर्च नहीं उठा सकता और न ही खेती की कीमतों पर नज़र रख सकता है। सहकारिता के बाद ठेके पर खेती किया जाए, कृषि व्यापार और मूल्य वर्द्धन किया जाए। प्रबंध करना सीखें और सरकारी मदद की उम्मीद नहीं करें।

सरकार संकट के समाधान के बजाए उसे समझाने में अधिक काबिल है। केंद्रीय कृषि मंत्री शरद पवार भी ऐसे ही समझाते हैं। उनका कहना है कि कम निवेश, कम उत्पादकता, छोटी होती जोतों, सूखे, फसल के खराब होने, सिंचाई की कमी, किसानों पर कर्ज के बोझ, कर्ज न चुकाने वाले किसानों का ऊंची दरों पर कर्जा देने वाले साहूकारों की शरण में जाने, पैदावार की मिलने वाली कम कीमत, बाजार तक कम पहुंच और किसानों को पूरक आमदनी के अभाव के कारण ऐसा हो रहा है।

दरसअल सरकार को पता नहीं है कि किसान की मदद कैसे की जाए। एक तरफ तो सरकार खेतिहर उत्पादों की कीमतें बढ़ाती है और दूसरे को महंगाई की चिंता सताती है। किसान को अपनी पैदावार की अच्छी कीमत चाहिए, लेकिन जनता के दबाव और लुभावने आंकड़े पेश करने के

शेष पृष्ठ 50 पर...

नैतिक मूल्यों की आदर्श प्रतिमूर्ति लाल बहादुर शास्त्री

गोपालसिंह बिष्ट

नैतिक मूल्यों और सादगी की आदर्श प्रतिमूर्ति श्री लाल बहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्तूबर, 1904 को मुगल सराय में हुआ था। पिता के असामयिक निधन के बाद इसका बचपन काशी में अपने मामा श्री रघुनाथ प्रसाद के घर बीता और वहीं पर इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। इनके मामा दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान थे। उन्हीं की कर्तव्य निष्ठा, लगन, सच्चरित्रता और ईमानदारी पर इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। काशी विद्यापीठ से शास्त्री की उपाधि प्राप्त करने के उपरांत वे भारत सेवक समाज के सदस्य बन गये। इससे जुड़ने के कारण ही उन्हें सच्चा देशभक्त बनने और देश की सेवा करने की प्रेरणा मिली। इनकी मां धार्मिक विचारों की महिला थीं, जो हमेशा दीन-दुखियों की सेवा में लगी रहती थीं। अपनी मां की विचारधारा की शास्त्रीजी पर गहरा प्रभाव पड़ा।

शास्त्रीजी बचपन से ही गांधीजी से काफी प्रभावित रहे। 1915 में उन्होंने पहली बार महात्मा गांधी का भाषण सुना। इससे वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उसी समय आजीवन देशसेवा करने का व्रत ले लिया। जब वे 17 वर्ष के थे तभी अपनी शिक्षा-परीक्षा को छोड़कर गांधीजी के आवाज पर असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। इसके बाद 1930 के नमक सत्याग्रह में भी उन्होंने भाग लिया। उन्होंने अंग्रेज सरकार की नीतियों के खिलाफ जगह-जगह भाषण दिए और जनता को जागरूक किया। अंग्रेज सरकार के विरोध के कारण उन्होंने अनेकों बार पुलिस की लाठियां खाई। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान वे कई बार जेल गए। 9 वर्ष तक जेल में रहे। जेल में रहते हुए उन्होंने कान्ट, हेगल, बर्टर्ड रसल, अल्ड्स हक्सले, मार्क्स, लेनिन, प्लूटो, लिंकन आदि पाश्चात्य विचारकों के साहित्य का अध्ययन किया। जेल में ही उन्होंने मैडम क्यूरी की लिखी पुस्तक को भी अनुवाद किया और असहयोग आंदोलन का इतिहास लिखा।

शास्त्रीजी का समूचा जीवन सामान्य भारतीय की तरह गरीबी और कष्ट में बीता, जो सच्चे अर्थों में सत्याग्राहियों से जिन गुणों की अपेक्षा करते थे, वे सब गुण उनमें थे। उनके मन में किसी के प्रति भी दुर्भावना नहीं थी। वे सत्य और अहिंसा के उपासक थे। महान कर्मयोगी, सहजता, सरसता, सरलता तथा मिलनशीलता उनकी अपार पूंजी थी। अटल विश्वासी तथा स्वाभिमानी शास्त्रीजी जो निर्णय लेते थे, उस पर वह अडिग रहते थे। गांधीवादी सिद्धांतों के इस अनुयायी ने कई ऐसे बड़े क्रांतिकारी कार्यों को निष्पादित करते हुए यह सिद्ध कर दिया था कि वे लगन, निष्ठा और दायित्वों के प्रति पूर्णरूप से समर्पित हैं। कभी-कभी तो वे ऐसे साहसपूर्ण कार्य कर डालते थे, जिन्हें देखकर गांधीजी और नेहरूजी भी चकित रह जाते थे। वे बेशक कद में छोटे थे, पर थे बड़े दिल वाले। उनमें अपार साहस और आत्मबल था। त्यागी तो वे ऐसे थे कि उन्होंने न तो कभी किसी लाभ की इच्छा की, न ही मान-सम्मान की।

पंडित गोविन्द बल्लभ पंत की मृत्यु के बाद सन् 1961 में उन्हें केंद्रीय गृह मंत्री बनाया गया। वे पहले ऐसे मंत्री थे जिनका अपना कोई घर नहीं था और किराये के मकान में रहते थे। अंत लोग उन्हें बेघर गृहमंत्री कहते थे। जब वे इलाहाबाद जाते थे तो सरकारी रेस्ट हाउस की बजाय अपने किराए के मकान में रहना पसन्द करते थे। केंद्रीय मंत्री होने के कारण जब भी वे सरकारी दौरों पर जाते थे, सरकारी अतिथि गृहों या बड़े होटलों में ठहर सकते थे, लेकिन वे जहां जाते, वहां कोई परिचित होता था तो उसी के यहां ठहरते थे। अन्यथा आम होटलों में ही ठहरते थे, जहां जन-साधारण ठहरा करता था। वे खुद कहते थे मैं गरीब देश का मंत्री हूं और उन्हीं लोगों की तरह यात्रा करना पसंद करता हूं तथा उन्हीं की तरह रहना चाहता हूं।

एक बार विपक्ष ने मिलकर सदन में ये शिकायत की कि मंत्रियों के आवासों में बिजली-पानी का अंधाधुंध खर्चा है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उसका भुगतान उन्हें स्वयं जो नहीं करना पड़ता। गृहमंत्री के रूप में शास्त्रीजी को बात जंच गई। उन्होंने तत्काल घोषणा की कि 250 रुपए से अधिक का बिल आने पर मंत्री को स्वयं बिलों का भुगतान करना होगा। उनके इस निर्णय की सभी ने जम कर प्रशंसा की।

महान कर्मयोगी शास्त्रीजी ने गांधीजी की तरह हरिजनों को गले लगाया। उनके उत्थान के लिए वे जीवनपर्यंत कार्य करते रहे। वे जनता को परमेश्वर का रूप मानते थे। वे एक ऐसे सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति थे, जिन्हें व्यक्ति की आम जरूरतों और समस्याओं की विशेष चिंता रहती थी।

शास्त्रीजी हर घटना को गहराई से समझते और अपनी सूझबूझ से कार्य करते थे। वे तटस्थता की ऊंचाई तक पहुंचे हुए व्यक्ति थे, जो

आलोचनाओं की परवाह किए बगैर विवेक बोध से काम करते थे। कठिन परिस्थितियों का सामना करने व समस्याओं को सुलझाने की अपार क्षमता उनमें थी। नेहरूजी शास्त्रीजी का बड़ा सम्मान करते थे। वे उनसे मुख्य विषयों पर सलाह-मशविरा किया करते थे। इसी का परिणाम था कि शास्त्रीजी ने असम का भाषाई विवाद और केरल का कम्युनिस्ट विद्रोह जैसी समस्याओं का समाधान बड़ी सूझ-बूझ और साहस से किया।

शास्त्रीजी समाज के प्रत्येक वर्ग का विशेष ध्यान रखते थे। महिलाओं की समस्याओं की तो उन्हें विशेष चिंता रहती थी। तभी तो गृहमंत्री का पद संभालने के बाद सर्वप्रथम उन्होंने महिलाओं को पुलिस में भर्ती करने का निर्णय लिया। उनके इस निर्णय ने सबको चौंका दिया। लेकिन शास्त्रीजी बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए। वे महिलाओं को बराबर का दर्जा दिलाने का प्रबल समर्थक थे।

पं. जवाहरलाल नेहरू के निधन के पश्चात 9 जून, 1964 को शास्त्री जी भारत के दूसरे प्रधानमंत्री बने। इस पद पर रहते हुए उन्होंने देश का सफल नेतृत्व ही नहीं किया बल्कि अनेक समस्याओं को भी सुलझाया। 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर अकारण युद्ध थोप दिया। शास्त्रीजी के नेतृत्व में देश ने उसका मुंहतोड़ जवाब दिया और उसे सबक सिखाते हुए चेतावनी दी कि भविष्य में भारत पर हमला करने की चेष्टा न करे अन्यथा परिणाम इससे भी कहीं भयंकर होंगे। उनके इसी नेतृत्व और साहस ने जहां एक ओर अमरीकी और इंग्लैंड के नेताओं के मुंह बंद कर दिए, वहीं दुनिया के सामने यह भी प्रमाणित कर दिया कि भारत अपने स्वाभिमान की रक्षा करना अच्छी तरह जानता है और विश्व में अपने महत्व को समझता है। शास्त्रीजी भले ही इस पद पर 19 महीने रहे, लेकिन इतनी कम अवधि में ही उन्होंने भारत की प्रतिष्ठा और गौरव को विश्व शिखर तक पहुंचाया। यह उनके धैर्य, साहस और सूझबूझ का ही परिणाम था।

अपने प्रधानमंत्री काल के दौरान उन्होंने एक बार केंद्र सरकार के सभी सचिवों को संबोधित करते हुए कहा था- "एक समय था जब मैं मात्र ढाई रुपए मासिक पर अपना गुजारा करता था। हमारा देश गरीब है। हम गरीब जनता की सेवा करते हैं, उसी के अनुसार हमें अपना खर्चा करना चाहिए। आप ऊंचे ओहदों पर हैं, आपको जनता और देश की भलाई का ध्यान रखना चाहिए। यही मेरी आपसे गुजारिश है।"

जय जवान-जय किसान का महत्वपूर्ण नारा 1965 की अभूतपूर्व लड़ाई में विजय के बाद का है जो शास्त्रीजी की ही देन है। इस विजय का श्रेय उन्होंने स्वयं नहीं लिया, बल्कि उसे देश के जवान और किसान को दे दिया।

शास्त्रीजी का एक ही जीवन-दर्शन था, कठिनाइयों का सामना वीरता से करो और सृजन के लिए संघर्ष करो, यही उन्होंने जीवन भर किया। इस देश का, समाज का और आधुनिक राजनीति का दुर्भाग्य था कि भारत का यह लाल सोवियत संघ के ताशकंद शहर में शांति की खोज करते हुए 11 जनवरी, 1966 को चिरनिद्रा में लीन हो गया। उसके निधन से सभी को गहरा दुःख हुआ।

शास्त्रीजी ने स्वयं कहा था "मेरे जीवन पर गांधी जी की शिक्षाओं का प्रभाव है। मैं उनके जीवन से सबसे अधिक प्रभावित रहा हूं। सत्य और अंहिसा में मेरी पूरी निष्ठा है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी मैंने अनुभव किया कि दुनिया की मुक्ति के लिए सबसे अधिक आवश्यकता इन्हीं चीजों की है।" वे गांधी विचार और जीवन के जीते-जागते उदाहरण थे। वह भी एक दैवी संयोग ही है कि गांधीजी की जयंती के दिन ही उनकी जयंती का भी दिन है। शास्त्रीजी जीवनपर्यंत जिन आदर्शों को जीते रहे, अगर हम उनके कुछ आदर्शों का भी अनुसरण कर सकें तो उनके सम्मान में इससे बड़ी श्रद्धांजलि और क्या होगी।

(साभार: प्रेस सूचना कार्यालय)

पृष्ठ 48 का शेष

सरकार के अपने प्रयासों के चलते उसे कीमतों को कम रकने पर मजबूर होना पड़ता है।

अधिक संख्या में होने के बावजूद किसानों को घाटे में रहना पड़ता है। उनको मिलने वाली सब्सिडी उर्वरक/कीटनाशक बनाने वालों और सप्लायरों की जेब में पहुंच जाती हैं आदमियों द्वारा अकुशल ढंग से अनाज का प्रबंधन, ढुलाई ओर भंडारण की वजह से उपभोक्ताओं को अनाज महंगा पड़ता हैं कीमतों को काबू में रखने के लिए सरकार को अनाज पर भारी सब्सिडी देनी पड़ती हैं चांदी बिचौलियों की होती है।

सरकार को विवादों को हल करना होगा और हो सके तो नकदी रहित सब्सिडी के बारे में सोचना होगा। अक्सर खाद्य टिकटों की सलाह दी जाती है। ब्राज़ील में गरीबों को नकद सब्सिडी दी जाती है लेकिन इसके लिए उन्हें अपने बच्चों को स्कूल भेजने और उन्हें टीके लगवाने की शर्त का पालन करना होता हैं, वंचित वर्गों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने और जिंदा रहने तथा प्रगति करने के इच्छुक लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए वित्त व्यवस्था पर फिर से गौर करना होगा।

हर स्तर पर चुनौती का सामना करने के लिए शिक्षा प्रणाली को दुरुस्त बनाना होगा। भारतीयों को प्रशिक्षित करें, प्रशासन का खर्च कम हो, आमदनी पर नहीं, खर्च पर टैक्स लगे। किसान को जागरूक बनाया जाए। वह चुनौती का सामना कर सकता है।

(ग्रासरूट)

साजिया आफरीन

देशभर के देहाती दस्तकारों की बेशुमार उत्कृष्ट व आश्चर्यजनक कलाकृतियां, हस्तशिल्प, सजावटी समान गलीचे, दरियां, शॉल, खिलौने, मिट्टी से बना सामान, पेंटिग्स, जैविक खाद्य उत्पाद, सूती व रेशमी कपड़े से बनी वस्तुएं, रेशमी व हथकरघा की साड़ियां जैसे इक्कत, पोचम्पल्ली, बलुचरी तथा अन्य कई मदें। यानी सिद्धहस्त हाथों द्वारा शिल्पित ग्रामीण उत्पादों की एक ऐसी प्रदर्शनी जिसे देखने और खरीदने के लिए समूचा संसार एक छत के नीचे जमा हो जाता है। ऐसा ही एक मौका था इस साल भारतीय अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेला, प्रगति मैदान का जहां एक बार फिर सरस मेला देखने को मिला। ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा आयोजित इस प्रदर्शनी में 21 हजार कारीगरों ने इस साल हिस्सा लिया जिसमें लगभग 55.91 करोड़ रुपये की बिक्री हुई। यह प्रदर्शनी 1999 से लगातार व्यापार मेला में आयोजित की जाती हैं केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री श्री रघुवंश प्रसाद सिंह ने उद्घाटन वर्ष पर कहा कि यह सरस मेला ग्रामीणों के विकास पर है।

आईआईटीएफ न सिर्फ देश नहीं बल्कि दुनिया के सबसे बड़े मेलों में शुमार किया जाता है। जहां गीत, संगीत, संस्कृति, सभ्यता से लेकर व्यवसाय, व्यापार, तकनीक, सूचना तकनीक, हथकरघा जैसी चीजों का एक साथ प्रदर्शन इतनी बड़ी मात्रा में किया जाता है तो हमारे ग्रामीण क्षेत्रों के दस्तकार भला कैसे पीछे रहते। निश्चित रूप से 14 दिनों तक चलने वाले इतने बड़े मेले में सरस पवैलियन में आने वाले लोगों का भी एक खास वर्ग तो था ही। सरस तो वैसे भी ग्रामीण क्षेत्रों के दस्तकारों के विकास का आईना है। और व्यापार मेला उनके लिए एक प्लेटफॉर्म से कम नहीं। इस सरस मेले में भारत के उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से लेकर पश्चिम तक की ग्रामीण क्षेत्रों की कारीगरी देखने को मिली। वैसे तो यह मेला बसंत सरस के नाम से 12 अप्रैल से 24 अप्रैल-2006 तक दिल्ली हाट में भी आयोजित किया गया था। मगर 14 नवंबर से 27 नवंबर तक चले विश्व व्यापार मेला की बात ही कुछ निराली रही। ग्रामीण शिल्पकारों के लिए भले ही प्लेटफार्म भर ही मगर शिल्पकार के शौकीन और ग्रामीण शिल्पकारों की खूबसूरत कलाकृतियां देने के उद्देश्य से हर वर्ष लगने वाले इस मेले ने भी लोगों को खूब आकर्षित किया। इस साल भी मेले में ग्रामीणों की शिल्पकारी के खूबसूरत नजारे दिखे।

लघुचित्रकारी का नया रूप और परंपरा को दर्शाती आधुनिकता का नमूना यहां एक अलग ही रंग बिखेरे हुए था। हर राज्य के लोकजीवन की बहुरंगी छटा को बिखेरती कलाकृतियां काबिलेतारीफ तो थी ही, उनकी उपयोगिता उनके महत्व को स्थापित करने में बल दे रही थी। सरस मेला को देखकर ऐसा लगा कि गंवई परिकल्पना को अब तो पंख लग ही गए है। यहां खासकर गैर-सरकारी संगठनों की यह कारगुजारियों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। ग्रामीण शिल्पियों ने इस मेले में कश्मीर की पश्मीना शॉल, कोल्हापुरी चप्पल, सैंडिल, मध्य प्रदेश की चंदेरी साड़ी, बनारसी साड़ी सर्दी के लिए गरम कपड़े, हरियाणा की कशीदाकारी के अलावा असम, मेघालय, सिक्किम, मणिपुर, मिजोरम आदि राज्यों के क्राफ्ट्समैन ने अपने शिल्पकारी को बखूबी संजायो हुआ था। इन क्राफ्ट्समैन ने उत्कृष्ट पच्चीकारी का नमूना भी पेश किया था। इसके अलावा दूसरे राज्यों के बेहतरीन हथकरघा एवं बुनाई के नमूने उपलब्ध थे। डिजाइनर बांस व बेंत के साजो-समान, सुगंधित जड़ी-बूटियां, मसाले, बागवानी भी दर्शनीय और खरीदारी के हिसाब से भी मनमुताबिक थे। यहां प्रदर्शित साज व समान को देखकर भलीप्रकार से यह आभास तो हो ही रहा था कि कामगार मजदूरों ने बड़ी ही तल्लीनता के साथ इसे तैयार किया था। उनकी मेहनत व लगन उनके काम और चेहरे को देखकर लगायी जा सकती थी। दरअसल, इन शिल्पकारों के सामने जो एक गंभीर समस्या है वह है इस प्रदर्शनी में आए दुकानदारों से बात कर सामने आई। इनके सामने सबसे बड़ी समस्या है कच्चे माल का पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाना और यदि उन्हें मिलता भी है वह बहुत परेशानी और ज्यादा दाम देने के बाद। इससे उनकी लागत मूल्य बढ़ जाती है। ऐसे में जरूरत है बस इन उद्योगों के आय एवं संपत्ति के केंद्रीकरण को बढ़ावा न देकर विकेंद्रीकरण को प्रोत्साहित करने की अनेक ऐसी कलाएं यहां देखने को मिली जो मशीनों से उत्पादित नहीं की जा सकती। इन पर कलात्मक नमूने उत्तम किस्म की कढ़ाई, नक्काशी का काम आदि इसके लिए तो हस्तकौशल की ही आवश्यकता होती है। भारत में कुशल श्रमिकों का भंडार है। यहां कुशल कामगारों के हाथों में अनेक कलाकारियां आज भी बखूबी है मगर ये अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इस बार सरस मेला पहले से कुछ उम्दा था, मेले में प्रदर्शनकारियों को देखकर ऐसा लगा की इनमें अब पहले की बनिस्बत ज्यादा मनोबल आ गया है। साधारण तकनीकी ज्ञान, कम पूंजी एवं मानवी दक्षताओं एवं कलात्मक रुचियों की बदौलत इन्होंने खुद को हर पहलू से दक्ष बना लिया है।

यहां खरीददारी करने आए लोगों ने बताया कि इतनी कम कीमत पर दिल्ली में और कहीं सामान मिल पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है और फिर क्वालिटी के हिसाब से भी बेहतर होता है। दूसरे यहां खरीददारी करने से उनका मनोबल भी दुगुना हो जाता है। लोगों ने सरस मेले में खरीददारी के साथ विभिन्न राज्यों से आए कलाकारों की सांस्कृतिक कला प्रदर्शनी से भी परिचय हुआ और उन्हें सराहा भी। जाहिर है यह प्रदर्शनी उन दस्तकारों व शिल्पियों के लिए यह विश्व व्यापार मेला भी यादगार रहा और दिल्ली वालों से उनका जमकर स्वागत भी किया।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

क्या संभव है गांवों का विकास?

विवेक देवराय

भारत के गांवों के बारे में महात्मा गांधी ने कई बातें कहीं हैं। चलिए उनमें से तीन को ऐसे ही चुन लेते हैं। पहली, "भारत उसके शहरों में नहीं बल्कि उसके गांवों में रहता है।" दूसरी, "अगर गांवों को नुकसान पहंचता है तो भारत को भी नुकसान होगा।" तीसरी, "भारत उसके कुछ शहरों में नहीं मिलेगा, बल्कि मिलेगा इसके सात लाख गांवों में- क्या हमने कभी यह सोचने की कोशिश की है कि इन लोगों को खाने को पर्याप्त मिलता है या नहीं और ये अपना तय ढक पाते हैं या नहीं।"

कुछ तो हमारी इस परंपरा का असर था कि इंदिरा गांधी ने 1976 में विज्ञान कांग्रेस में गांवों के बारे में हमारी इस सोच की चर्चा की। उन्होंने कहा था, "हमारी आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा गांवों में रहता है और आने वाले सालों में गांवों में ही रहेगा। मैं तो यह भी कहूंगी कि हम उन लोगों को गांवों से हटाना भी नहीं चाहते हैं। माना, दुनिया भर में शहरीकरण से आराम और उत्साह पैदा हुआ है, लेकिन कौन इस बात से इंकार कर सकता है कि इससे पेचीदा समस्याएं पैदा नहीं हुई हैं? ग्रामीण जीवन इतना समृद्ध होना चाहिए कि लोगों और संसाधनों को बाहर जाने की ज़रूरत ही नहीं पड़नी चाहिए।"

राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम, भारत निर्माण और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम में भी आमतौर पर यही निषेध देखने में आता है। ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसर ताकि अन्य भौतिक और सामाजिक बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाए। इससे पलायन की मजबूरी वाले कारण पर काबू हो पाएगा।

2001 की जनगणना से हमें पता चलता है कि भारत की 74.27 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है, जबकि शहरों में 25.73 प्रतिशत लोग ही रहते हैं। देश में 384 शहरी बसावटें हैं, 5161 शहर, दो करोड़ 70 लाख से अधिक नगर हैं तथा 3.5 करोड़ से भी अधिक शहरी बसावटें हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि देश मे 6,38,365 गांव हैं, जिनमें से कुछ बिना आबादी के हैं जिन राज्यों में 40 हजार से अधिक गांव हैं, वे हैं: राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उडीसा, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र। दरअसल बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र।

मानते हैं कि ग्रामीण/शहरी की परिभाषाएं स्पष्ट नहीं है। जनगणना के मकसद से पांच हजार से अधिक की आबादी से अधिक के इलाके को कस्बा कहा जाता है और इसका जनसंख्या घनत्व कम से कम चार सौ प्रति वर्ग किलोमीटर होना चाहिए और इसकी 75 प्रतिशत से अधिक कामकाजी पुरुष जनसंख्या का गैर-कृषि कामों मे लगा होना ज़रूरी है।

लेकिन आबादी सहित इन मापदंड़ों के बावजूद, राज्यों को हर किसी उन भौगोलिक क्षेत्र को शहरी घोषित कर देना सुविधाजनक होता है, जिसमें कोई निगम, नगरपालिका या नगर-पंचायत हो। इससे विपरीत, जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन के बावजूद यूपीए सरकार और शहरी विकास मंत्रालय की कृपा से किसी बसावट को ग्रामीण घोषित के लिए विकृत प्रोत्साहन है।

भारतीय गांव की औसत आबादी 1,161 है और इतनी आबादी से गांव में भौतिक या सामाजिक सुविधाओं की व्यवस्था कर पाना व्यावहारिक नहीं होता है। 91 हजार 500 गांवों की आबादी 200 से भी कम है और ऐसे 12,644 गांव केवल उड़ीसा में हैं। ऐसी आबादी वाले गांवों की बड़ी सख्या वाले राज्य हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, झारखंड और मध्य प्रदेश हैं और 1,27,515 गांव हैं, जिनकी आबादी 499 से कम है; 14,806 की आबादी पांच हजार से अधिक है और 3,963 गांवों की आबादी दस हजार से अधिक हैं गांवों की संख्या का कोटा बनाने का हमारा कोई इरादा नहीं है।

बल्कि कहना यह है कि अगर शहरी नियोजन को सही ढंग से किया जाता है तो दो लाख से भी अधिक गांव तो गायब ही हो जाएंगे और तब हमारे यहां बड़े गांव या कस्बे होंगे जिनकी आबादी दस हजार से अधिक होगी और जो एक लाख के आंकड़े को भी पार कर जाएंगे। जवाब दस लाख की आबादी के शहरों या दस हजार से कम की बसावटों में नहीं हैं अगर परिवहन (मूलत: सड़क परिवहन) में सुधार होता है तो यह अपने आप ही होगा और हम उन जगहों पर इसे होता हुआ देखेंगे, जहा राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना की शुरूआत हो चुकी है।

लेकिन सवाल यह है कि इन नई बसावटों में नगर नियोजन शुरू करेगा कौन? चलिए एक अलग सा सवाल पूछते हैं। भारत के किस शहर ने 2004 में संयुक्त राष्ट्र के ग्लोबल शहर का पुरस्कार जीता था? वह चंडीगढ़ पुणे या बेंगलोर नहीं था, बल्कि यह था जमशेदपुर। कहने का मतलब यह है कि हमें ऐसे शहरों की ज़रूरत है जो निजी क्षेत्र द्वारा प्रदान की जाती हों।

जमशेदपुर के सबक से आइए हम पुडोंग मॉडल की बात करते हैं। शंघाई आने वाले लोग शंघाई के ढांचे को देखकर हैरत में पड़ जाते हैं। वैसे उनका तात्पर्य पुडोंगा से होता है। 1990 से पहले पुडोंग था ही नहीं। किसी मौजूदा शहर के लिए योजना बनाने का काम असंभव नहीं तो कठिन तो होता ही है। 'ग्रीन फील्ड' विकास आसान होता है और यही पुडोंग में हुआ। (राजमार्गों के साथ भी ऐसा ही होता है।) इससे हम एक नतीजे पर पहुंचते हैं जिसे स्वीकार करने में हमें हिचकिचाहट हो सकती है।

हमें 1984 के भू-अधिग्रहण अधिनियम पर गौर करना चाहिए और इसमें सुधार करने चाहिए। यह विचार वाणिज्य मंत्रालय के दिमाग में आया। फिर से सोचने पर लगता है कि क्या यह स्वाभाविक है, क्योंकि पुडोंग मूलत: एक विशेष आर्थिक ज़ोन था। विशेष आर्थिक ज़ोन और करों तथा ज़मीन के बारे में रियायतें निर्यात के लिए नहीं हुआ करती हैं। वे निजी क्षेत्र द्वारा बनाए जाने वाले विशेष आर्थिक ज़ोन नगरों के एक नए क्लस्टर के बारे में हैं।

(ग्रासरूट)

सरस - लघु उद्यमियों के लिए एक सुनहरा अवसर

अर्चना सूद

देश के विभिन्न भागों में निर्मित ग्रामीण तथा पारंपरिक उत्पाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारे देश के प्रत्येक राज्य में ग्रामीण शिल्प कला के विभिन्न प्रकार के नमूने देखने में आते हैं। विभिन्नता में ही उनका आकर्षण हैं, यहां तक कि प्रत्येक राज्य के विभिन्न भागों में भी अलग-अलग प्रकार की शिल्प वस्तुएं बनाने में ग्रामीण कारीगर माहिर हैं। उड़ीसा के पट-चित्र, पिपली का गोटा-पट्टा कार्य, ताड़पत्र चित्रकारी, माणिक तथा शंख शिल्प जैसी विशिष्ट शिल्प कृत्तियां देश-विदेश में लोकप्रिय हैं। कलमकारी चित्रकारी की महीन कारीगारी तथा उनके प्राकृतिक समृद्ध रंगों ने भारत का नाम विश्व के शिल्प मानचित्र पर अंकित कर दिया है। हमारे कारीगर युगों से अपने पारंपरिक शिल्पों का उपयुक्त ढंग से उत्पादन कर रहे हैं, किंतु उन्हें अपने उत्पादों के लाभकारी मूल्य ना पा सकना उनकी मुख्य समस्या है। यहां एक बार फिर बिचौलियों का साम्राज्य दिखाई देता है जो उनके कड़े परिश्रम की कमाई में से बहुत बड़ा हिस्सा झपट ले जाते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय की विभिन्न पहलों तथा राज्य सरकारों के कार्यक्रमों द्वारा आज ग्रामीण कारीगरों के पास अपने उत्पादों को अच्छे मूल्यों पर विपणन करने के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। इनमें से सरस द्वारा आयोजित मेले एक बढ़ा हुआ और लोकप्रिय कदम है।

पारंपरिक ग्रामीण शिल्प तथा स्वरोजगारियों की शिल्प वस्तुओं को बढ़ावा देने के लिए केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय, देश के विभिन्न भागों में आयोजित किए जाने वाले क्षेत्रीय सरस मेलों के साथ वर्ष 1999 से नई दिल्ली के प्रगति मैदान में भारतीय अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले के दौरान सरस मेलों का आयोजन कर रहा है। वर्ष 2003-04 के दौरान क्रमश: दिल्ली, हैदराबाद, भुवनेश्वर, गुवाहाटी तथा जयपुर में 7 क्षेत्रीय सरस मेले आयोजित किए गए। वर्ष 2004-05 में ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 21 क्षेत्रीय सरस मेलों का आयोजन किया तथा चालू वर्ष में मंत्रालय द्वारा 22 क्षेत्रीय सरस मेलों का आयोजन प्रस्तावित है जिनमें से 10 मेले पहले ही आयोजित किए जा चुके हैं।

सरस-2006 में ग्रामीण उत्पादों की भावभीनी प्रदर्शनी का वास्तव में एक अति उत्तम किस्म का अनुभव रहा। संपूर्ण भारत के ग्रामीण कारीगरों के उत्पादों के उत्कृष्ट एवं अद्भुत कम विन्यास में हस्तशिल्प, साज सज्जा की कलाकृतियां, गलीचे, दरियां, शालें, मिट्टी के बर्तन, चित्रकारियां, खाद्य उत्पाद सूती, रेशमी तथा अन्य धागों से निर्मित सिले-सिलाए वस्त्र, विभिन्न प्रकार के खिलौने एवं इस प्रकार की अन्य वस्तुओं से सजे स्टालों की रंग सज्जा देखते ही बनती थी। ग्राहकों की अधिकाधिक भीड़ और हाथों हाथ इन सुंदर कला कृतियों का बिकना उनकी बढ़ती लोकप्रियता को दर्शाता है।

देश के सभी राज्यों से 700 से भी अधिक सहभागियों ने भारतीय अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले में आयोजित सरस मेले में भाग लिया। यह आयोजन देश के विभिन्न शिल्पियों के लिए देश की राजधानी में अपने उत्पादों को प्रदर्शित करने तथा अपनी कलाकृतियों के बारे में खरीददारों की राय जाने का एक महत्वपूर्ण अवसर है। मेले के दौरान शिल्पकारों को ऐसे अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपने उत्पाद प्रदर्शित करने के अतिरिक्त उनकी बिक्री करने, शहरी खरीददारों की प्राथमिकताओं तथा रुचियों को जानने, खरीददारों की उम्मीदों अनुरूप अपने उत्पादों का मूल्यांकन करने तथा अपने उत्पादों की गुणवत्ता, डिजाईन, पैकेजिंग आदि अन्य पहलुओं के विषय में आवश्यक परिवर्तन करने हेतु जानकारी प्राप्त करने का सुनहरा अवसर मिलता है। वर्ष 2005-06 के दौरान क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित विभिन्न सरस मेलों में 21.25 करोड़ रुपये मूल्य के उत्पादों की बिक्री हुई और लगभग 9000 ग्रामीण स्वरोजगारियों को लाभ प्राप्त हुआ है।

इस अवसर पर अनेक समितियों (एस.जी.एस.वाई.एस.) ने अच्छी खासी बिक्री की। पश्चिम बंगाल राज्य के वीरभूम जिले की अन्नपूर्णा दास का उदाहरण लीजिए जो अप्रैल, 1996 में गठित एक इस महिला सदस्यीय स्वयं सहायता समूह की सदस्य हैं। इस समूह ने कच्चे माल की प्राप्ति हेतु डीआरडीसी से 1,65,000/- रुपये का ऋण लिया था। ऋण लेने से पूर्व यह समूह विष्णुपुर में अपने उत्पादों, साड़ियों, सूट आदि को महाजनों के हाथों बिक्री करता था, किंतु सरस के अंतर्गत आयोजित दिल्ली, मुंबई, भोलपुर, शांतिनिकेतन, हल्दिया आदि स्थानों पर लगे मेलों में भाग लेने के बढ़े हुए अवसरों के कारण इस समूह की आय पर्याप्त रूप में बढ़ी है। इन मूलों में भाग लेने के लिए इन्हें आने-जाने का किराया, रहने-खाने का व्यय एवं स्टाल आदि सुविधा राज्य सरकार द्वारा प्रदान की गई। इन बढ़े हुए अवसरों द्वारा अब समूह के प्रत्येक सदस्य को 1500 से 2000 रुपये प्रतिमाह तक की आमदनी होती है। इसका मुख्य श्रेय राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर चलने वाले विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रदान की जा रही सुविधाओं को जाता है।

सरस के प्रमुख पहलू

सरस मेले में कारीगर विभिन्न प्रकार की शिल्प वस्तुएं बनाते हुए भी दिखाये जाते हैं। इस प्रकार यहां आगंतुक कारीगर के सृजन के पहलुओं तथा इस सृजन से प्राप्त आनंद की प्रति उद्भासित होता है और हस्तशिल्प की रचना में अपनाई गई प्रक्रिया की जानकारी भी प्राप्त करता है। दीर्घकालीन विपणन संबंध बनाने के लिए खरीददारों तथा विक्रेताओं की

बैठकें भी आयोजित की जाती हैं जहां पर कारीगर उत्पाद विकास, अपने उत्पादों की विपणयेता आदि पर फीडबैक प्राप्त करने के लिए थोक खरीददारों के साथ अनेक निर्यातकों से मिलते हैं। यहां पर कारीगर अपनी रचनाओं को दर्शाते हैं और अनेक कारीगर दीर्घकालीन आर्डर भी प्राप्त करते हैं। हस्तशिल्प एम्पोरियमों तथा निर्यात गृहों से रूबरू होना भी इस मेले का उत्साहवर्द्धक भाग बन चुका है, जहां कारीगरों को बाजार, उत्पाद श्रेणियों की विभिन्नताओं तथा कुशलतापूर्वक परंपराओं की अभिमुखता को समझने के लिए निर्यात/व्यापारिक प्रतिष्ठानों, विभिन्न हस्तशिल्प एम्पोरियमों में ले जाने का आयोजन भी किया जाता है।

उत्पाद के डिजाइनों, मूल्य-वृद्धि पैकेजिंग तथा गुणवत्ता आदि विषयों में व्यावसायिक निवेश की जान डालने के लिए सभी मेलों के दौरान उत्पादों तथा निरंतर रूप में बदलती विपणन शक्तियों (बाजारी ताकतों) पर कार्यशालाएं भी आयोजित की जाती हैं। ये कार्यशालाएं विकसित तकनीकों, प्रवृतियों तथा विपणन नीतियों के विषय में नवीनतम सूचना प्राप्ति का मंच बनती हैं। विशेषज्ञ तथा कारीगर विभिन्न उत्पादों तथा उनकी विपणयेता पर विचार-विमर्श करते हैं। इस वर्ष चर्म क्षेत्र के कारीगरों ने चर्म क्षेत्र विषय पर आयोजित कार्यशालाओं के माध्यम से अपने कौशल को बढ़ाया। उपयुक्त ढंग से अपने उत्पादों की पैकिंग करने में शिल्पियों एवं कारीगरों को दक्ष बनाने हेतु पैकेजिंग विषयों पर भी एक नई दिशा मिलने के साथ-साथ उन्हें इसकी भी जानकारी प्राप्त हुई उनके उत्पाद बाजार में शहरी उत्पादों के साथ पूरी प्रतिस्पर्धा कर सकें।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार एवं जनसंपर्क सलाहकार है)

विशेष आर्थिक क्षेत्र-सफलता की गाथा

कुछ विशेष आर्थिक जोनों के बारे में निवेश, स्थान, रोजगार आदि की बुनियादी जानकारी इस प्रकार है -

नोकिया विशेष आर्थिक जोन, श्रीपेरम्बदूर

• 100 मिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश हो चुका है। • 3700 प्रत्यक्ष रोजगार, 10000 अप्रत्यक्ष रोजगार • दिसंबर, 2007 तक अनुमानित रोजगार 20000 • हर माह 25 लाख हैंडसेटों का उत्पादन

फ्लेक्सट्रॉनिक्स विशेष ओर्थिक जोन, श्रीपेरंबदूर

• 100 मिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश • जनवरी, 2007 से उत्पादन की शुरूआत • 1000 व्यक्तियों को रोजगार दिया जा चुका है

सिपकॉट-मोटोरोला-फॉक्सकॉन-डेल विशेष आर्थिक जोन, श्रीपेरम्बदूर

• 200 मिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश • 15000 व्यक्तियों के लिए प्रत्यक्ष रोजगार • उच्च प्रौद्योगिकी निर्माण का केंद्र

अपाचे विशेष आर्थिक जोन, टाडा, आंध्र प्रदेश

• 50 मिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश • जून, 2007 तक 25000 लोगों को रोजगार • 5000 व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा चुका है

दिव्वीज लेबोरेटरीज, आंध्र प्रदेश

• सितंबर 2006 में काम करना शुरू किया • अप्रैल 2007 तक 8000 लोगों को रोजगार

राजीव गांधी प्रौद्योगिकी पार्क, चंडीगढ़

• इंफोसिस प्रौद्योगिकी द्वारा विभिन्न गतिविधियों की शुरूआत • 500 व्यक्तियों की नियुक्ति और इन्हें प्रशिक्षण दिया जा रहा है • जून 2007 तक 5000 लोगों को रोजगार

ब्रैंडिक्स एपैरेल, विशाखापत्तनम, आंध्र प्रदेश

• वस्त्र उद्योग से संबंधित विशेष आर्थिक जोन • 1000 मिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश • मार्च, 2009 तक 60,000 लोगों को रोजगार

क्वार्कसिटी विशेष आर्थिक जोन, पंजाब

• 5000 मिलियन अमरीकी डालर के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का अनुमान • 35000 व्यक्तियों को रोजगार

हैदराबाद जेम्स, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश

• रत्न और आभूषण के लिए विशेष आर्थिक जोन • 100 मिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश • मार्च, 2009 तक 30,000 अनुमानित रोजगार • 1000 लड़कियों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है

ईटीएल इंफ्रास्ट्रक्चर, चेन्नै

• सूचना प्रौद्योगिकी/सूचना प्रौद्योगिकी संचालित सेवाओं के लिए विशेष आर्थिक जोन • पहली गोल्ड रेटेड ग्रीन बिल्डिंग, 30 प्रतिशत ऊर्जा की बचत • 4000 लोग कार्यरत

कृषि ऋण और "मार्गदर्शिका"

कमलेश कुमार

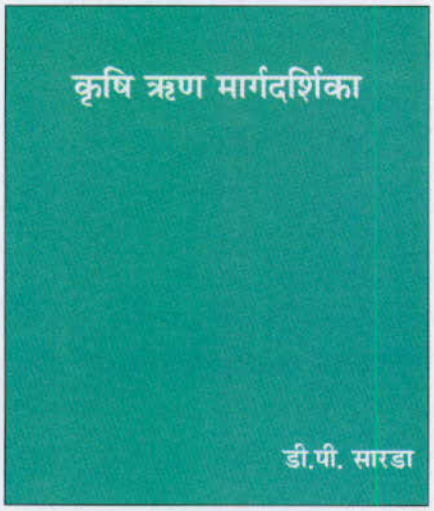

पुस्तक : कृषि ऋण मार्गदर्शिका; लेखक : डी.पी. सारडा
प्रकाशक : गोविंद प्रकाशन, 37, नटराज नगर, टोंक फाटक, जयपुर-302 015; मूल्य : 265 रुपये

प्राकृतिक रूप से वैविध्यपूर्ण भारत की विशाल जनसंख्या जिसको भारत की रीढ़ कह सकते हैं, गाँवों में निवास करती है और इस आबादी का अधिकांश भाग कृषि पर निर्भर है। चूंकि यहां आधारभूत चीजें जैसे-बिजली, पानी, सड़क आदि की स्थिति शोचनीय है, इसलिए यहां मानवीय समस्याएं और प्राकृतिक आपदाओं के चलते किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। फलस्वरूप किसानों के समक्ष पूंजी की समस्या खड़ी हो जाती है। इस स्थिति से निपटने के लिए किसानों को ऋण की आवश्यकता पड़ती है।

'कृषि ऋण मार्गदर्शिका' डी.पी. सारडा द्वारा लिखित एक ऐसी पुस्तक है जिसमें ऋण प्राप्त करते समय आने वाली दिक्कतों तथा सावधानियों को बहुत व्यवहारिक ढंग से समझाया गया है। विडंबना ही कहिये कि कृषि प्रधान देश भारत में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान मात्र लगभग 22 प्रतिशत है। यह कृषि उत्पादकता की गिरावट और प्रतिव्यक्ति आय में कमी को दर्शाता है। पुस्तक में कृषि से संबंधित जैसे-डेयरी फार्मिंग, मुर्गीपालन, कृषि ठेका फार्मिंग, बागवानी आदि परियोजनाओं के भी विषय में विस्तार से जानकारी दी गई है। पुस्तक को कई इकाईयों में बांटा जा सकता है।

पुस्तक में 'कृषि ऋण' के सम्बन्ध में बताया गया है कि किस-किस प्रकार से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष ऋणों को प्राप्त कर सकते हैं तथा कृषि-संबंधित औजार, सिंचाई, परिवहन, पंप जैसी छोटी-छोटी चीजों के लिए भी ऋण प्राप्त किया जा सकता है। किन-किन चीजों के लिए अल्पावधि, मध्यावधि तथा दीर्घावधि ऋण लिया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को कृषि तथा संबंधित क्षेत्रों को ऋण प्रदान करने के सम्बन्ध में दिये गये निर्देशों जैसे-आवेदन प्रक्रिया, ब्याज, निरीक्षण प्रतिभूति मानदंड, ऋण चुकाने की सीमा आदि की व्याख्या की गई है।

इसमें किसानों और बैंकों, दोनों के लिए सावधानियों के विषय में बताया गया है कि किसान ऋण लेते समय और बैंक ऋण देते समय किन-किन चीजों का धयान रखें। इसमें कृषि स्नातक संबंधी ऋणों की चर्चा भी की गई है। इससे नि:संदेह कृषि स्नातक लाभान्वित होंगे।

किसानों से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण योजना 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना' के महत्त्व को देखते हुए इसके प्रत्येक पहलू पर समुचित प्रकाश डाला गया है। बताया गया है कि कैसे इसके माधयम से ऋण में सरलता आती है। इस योजना के तहत उन ऋणों को भी ध्यान में रखा जाता है जिनको किसानों ने महाजनों, सूदखोरों आदि स्रोतों से लिया है। केसीसी के तहत वैयक्तिक बीमा दुर्घटना की भी व्यवस्था है और बीमे को प्राप्त करने की प्रक्रिया को काफी सरल बनाया गया है। इस योजना को देश में चार बीमा कम्पनियों द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है। इस योजना के माध्यम से बैंक और किसान दोनों लाभान्वित हुए हैं।

एक अन्य इकाई के अर्न्तगत 'डेयरी फार्मिंग, मुर्गीपालन, कृषि ठेका फार्मिंग' आदि को रख सकते हैं। बताया गया है कि डेयरी फार्म कैसे पूरे वर्ष रोजगार के अवसर पैदा करते हैं, कैसे छोटे किसानों के लिए आय का महत्त्वपूर्ण साधन हो सकते हैं, क्योंकि जनसंख्या, औद्योगीकरण, नगरीकरण आदि के कारण किस तरह दूध के भाग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। ऋण के सम्बन्ध में बैंक किस तरह का रवैया अपनाये, उसको भी दर्शाया गया है और बैंकों के लिए उन आधार बिन्दुओं को भी दर्शाया गया है जिसके आधार पर वे ऋण को स्वीकृति प्रदान करें। मुर्गीपालन भी वर्तमान समय में जीवनयापन के महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरकर सामने आया है। पुस्तक में बताया गया है कि किन-किन कारणों से यह व्यवसाय लोकप्रिय हुआ है और कैसे कम लागत से शुरू होने वाले इस व्यवसाय से पारिवारिक श्रम के जरिए आधिकाधिक लाभार्जन किया जा सकता है। पोल्ट्री फार्म खोलते समय कुछ चीजों का ध्यान जैसे-जलवायु, जल-व्यवस्था, बिजली, पशु-चिकित्सक आदि रखने की जरूरत है। यदि कृषि ठेका फार्मिंग की बात करें तो यह एक ऐसा व्यवसाय है जिसके माधयम से किसानों की आय बढ़ने के साथ-साथ ग्रामीण जनता के लिए भी अतिरिक्त रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। इसके द्वारा किसानों के साथ-साथ बैंकों का भी जोखिम कम हो जाता है। साथ ही ठेका फार्मिंग की सीमाओं तथा इसमें सावधानी रखने वाली बातों को भी शामिल किया गया है। इन सावधानियों के पालन से किसान उत्पादन के बाद हो सकने वाली मुकदमेबाजी और शोषण से भी बच सकते हैं।

एक दूसरी इकाई के अर्न्तगत 'सिंचाई तथा भूमि संबंधी योजनाएं, एग्रीक्लिनिक तथा एग्रीबिजनेस, कृषि मशीनीकरण' जैसी चीजों को रखा जा सकता है। सिंचाई और भूमि संबंधी योजनाओं की बात करें तो बढ़ती जनसंख्या वृद्धि और उद्योग धन्धों के कारण जल की मांग बहुत तेजी से बढ़ रही है तो कृषि के लिए भी जल की अपरिहार्यता सामने है। इकाई में बैंकों से किस प्रकार जल संबंधी ऋण लिया जाय तथा ऋण जारी करते समय किन चीजों का ध्यान रखा जाय, इस पर विशेष बल दिया गया है। चूंकि जल की समस्या से ही भूमि की समस्या संबंधित है अत: जल के सही उपयोग से अधिकाधिक भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है, और इस सम्बन्ध में बैंक क्या कर सकते हैं, बखूबी बताया गया है। चूंकि मशीनीकरण के माध्यम से कम मेहनत या समय के द्वारा कृषि उत्पादकता को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। इसकी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए बैंकों ने अनेक मशीनों जैसे ट्रैक्टर, पुराने ट्रैक्टर, ट्रेलर, थ्रेसर आदि के लिए भी ऋण की व्यवस्था की है। इस सम्बन्ध में बैंक कैसे ऋण प्रदान करे तथा उनकी वापसी की समय सीमा क्या हो और इस सम्बन्ध में बीमा कम्पनियों की मदद किन परिस्थितियों में ली जाये, आदि को चिन्हित किया गया है। कृषि आय को अधिकाधिक बढ़ाने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी का उपयोग ज्यादा से ज्यादा मात्रा में करने संबंधी धारणाओं को एग्रीक्लिनिक तथा एग्रीबिजनेस जैसी संस्थाएं सामने रखती हैं। ऐसी परियोजनाओं को चलाने के लिए कृषि स्नातक होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में नाबार्ड द्वारा दी गई कुछ मॉडल परियोजनाओं को भी पुस्तक में बताया गया है।

एक अन्य इकाई में मध्यम व बड़ी परियोजनाओं का मूल्यांकन मौजूद है। इसमें तकनीकी मूल्यांकन, वाणिज्यिक मूल्यांकन, परियोजना की लागत एवं वित्त स्रोत, वित्तीय पूर्वानुमान आदि को रख सकते हैं। इस इकाई में बताया गया है कि क्यों कृषि निर्यात बढ़ाने के लिए माध्यम और बड़ी परियोजनाओं को ऋण देना आवश्यक है, वे कौन-कौन सी परियोजनाएं है जो बैंकों के पास आ सकती हैं। बैंकों के लिए कुछ मानदंड भी बताये गये है जिनके आधार पर परियोजनाओं का ऋण स्वीकार किया जा सके। तकनीकी मूल्यांकन से आशय परियोजना की भौतिक अवस्थिति तथा परियोजना का स्थानीय स्थितियों को ध्यान में रखकर की जाने वाली अमल प्रक्रिया से है, न कि कही और के अन्धानुकरण से है। इस बात का विशेष रूप से संबंध है कि परियोजना से प्राप्त आय उसकी लागत से अधिक न हो। वाणिज्यिक मूल्यांकन में प्रतियोगिता की गहनता, कीमत निर्धारण नीति, वितरण माध्यम, उत्पादन नाम, पैकिंग व परिवहन आदि चीजों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। लाभ का आकलन करते समय बाजार की सम्पूर्ण परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। वित्तपोषण के समय परियोजना लागत का भी ध्यान रखना चाहिए। ऐसा न हो कि बीच में ऋण की कमी पड़े और बीच में ही किसानों को पुन: ऋण प्रक्रिया से गुजरना पड़े। ऋण अधिक भी न हो क्योंकि इससे ऋण दुरुपयोग की संभावना बढ़ जाती है। किसी परियोजना का वित्तीय पूर्वानुमान करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह वास्तविक परिणाम से 10 फीसदी से अधिक का अन्तर न दिखाये। इसके लिए मूल्यांकनकर्त्ता अधिकारी को सभी पक्षों का अध्ययन करना चाहिए।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण इकाई के अन्तर्गत 'प्रबंध मूल्यांकन, संवितरण, पर्यवेक्षण, कृषि ऋण बढ़ाने हेतु सुझाव' जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को रख सकते हैं। इसमें प्रबन्ध के महत्त्व को बताया गया है कि किस प्रकार बेहतर प्रबंधन के कारण कोई परियोजना दूसरी परियोजना से कैसे आगे निकल जाती है। किसी को ऋण देने से पहले बैंक को उसके चरित्र, प्रतिष्ठा, जीवन शैली, पारिवारिक पृष्ठभूमि का भी धयान रखना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार इसका परीक्षण कैसे किया जा सकता है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए प्रबंधन / समिति को परियोजना चलाने की योग्यता है। ऋणों की मंजूरी तथा दस्तावेजों के आय के उपरांत ही ऋणों का संवितरण किया जाना चाहिए। यथासंभव अग्रिम समस्याओं को जानने के लिए परियोजना का पर्यवेक्षण जरूरी है। पुस्तक की अन्तिम इकाई में बैंकों के लिए कुछ सुझाव दिये गये हैं जो बैंकों के कृषि ऋण प्रवाह में नि:सन्देह बहुत लाभप्रद होंगे।

आज के इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में भारत ने भी 2020 तक विकसित राष्ट्र बनने के लिए कमर कसी है। किन्तु महत्त्वपूर्ण सवाल यह खड़ा होता है कि क्या हम कृषि क्षेत्र जिस पर भारत की 65 से 70 प्रतिशत जनता निर्भर हो, को अनदेखा कर इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं? सिर्फ कानून बनाना ही विकास की गारंटी होती तो हम 2020 का लक्ष्य बहुत पहले ही प्राप्त कर चुके होते। अत: जरूरत है योजनाओं के सुचारूपूर्ण क्रियान्वयन की। जाहिर है, अभी भी भारत की नींव अर्थात् कृषि क्षेत्र में विकास की पर्याप्त संभावनाएं है और इन पर ईमानदारीपूर्वक अमल करने की जरूरत है।

प्रस्तुत पुस्तक एक ओर जहां किसानों / उद्यमियों के लिए कृषि और संबंधित छोटी से छोटी जानकारी उपलब्ध कराती है, वही बैंक भी इसके माध्यम से तकनीकी और व्यावहारिक लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि "लेखक ने इस क्षेत्र से संबंधित जितनी भी समस्याएं हो सकती है, उनको प्रत्येक स्तर पर उठाया है तथा उनका बहुत ही व्यवहारिक तथा सटीक समाधान भी प्रस्तुत किया है।" सरकार को इस पुस्तक को जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि जानकारी के अभाव में लोग बैंक की बजाय साहूकारों आदि स्रोतों से ऋण लेना बेहतर समझते है। यदि प्रस्तुत पुस्तक को किसान तथा बैंक अमल में लाते हैं तो कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारत में 'ऋण-क्रांति' आ सकती है। कुल मिलाकर डी.पी. सारडा का यह प्रयास काफी प्रशंसनीय और महत्त्वपूर्ण है।

(लेखक समीक्षक हैं।)

RAU'S IAS

A name that Nation trusts

Amazing Success

Our 2005 Exam Results : Nine positions secured by our students in first 20 and 49 in first 100 with overall 203 total selections. As regards the past achievements, Study Circle has contributed nearly one-third of the total selections done for Civil Services by UPSC since 1953.

It is a well known fact that Rau's is the most trusted and recommended name all over the country for IAS & PCS coaching.

Unbeatable Strategy

Answers that matter : The most crucial fact about coaching is that it should improve the quality of your answers in the minimum possible time. It is precisely this training on which we focus on at Rau's to give an extra edge to the answers you give / write in the Civil Services Examination.

Be Sure

We have no branches or associates any where in India except Jaipur. Our name which has become a legend among students for the highest standards in teaching, and hence has been copied by a lot of people across India, but no one can match our quality.

Programme Highlights

Civil Services/PCS Exam - 2007 & Judicial Services Exam - 2007

- Personal Guidance (English Medium) is available for -
  General Studies/ Essay, History, Sociology, Public Administration, Geography, Psychology, Law & Commerce.
- पर्सनल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
  सामान्य अध्ययन / निबंध, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र एवं लोक प्रशासन में उपलब्ध।
- Postal Guidance in English Medium available for -
  General Studies, History, Sociology, Public Administration and Geography.
- पोस्टल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
  केवल सामान्य अध्ययन, भारतीय इतिहास एवं भूगोल में उपलब्ध।
- Hostel facility arranged.

कोई भी लक्ष्य बड़ा नहीं ।
जीता वही जो डरा नहीं ।।

If you are taught by the stars, sky is the limit.

Contact personally or write for prospectus with a DD/MO of Rs. 50/- favouring

RAU'S IAS STUDY CIRCLE

Head Office : 309, Kanchanjunga Bldg., 18, Barakhamba Road, Connaught Place, New Delhi-110001
Phone : 23738906-07, 23318135-36, 32448880-81, 65391202, Fax: 23317153

Jaipur Centre : 701, Apex Mall, Lal Kothi, Tonk Road, Jaipur - 302015, Ph.: 0141-6450676, 3226167, 9351528027

For full details on fast-track log-on our website: www.rauias.com

The Original Rau's / Rao's - Since 1953

KH-01/07/01

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)-05/3164/2006-08
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)-55/2006-08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-08
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

किसान आत्महत्या चिन्ता का विषय

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : संपादक : स्नेह राय